मई, 2018

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Cover II

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2018 अंक - 5

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2018) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपने पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

आज अदालतों में लगभग 3 करोड़ मुकदमे लम्बित हैं । पक्षों को न्याय नहीं मिल पा रहा है और न्यायाधीश भी अत्यधिक मुकदमों के बोझ के तले दबे हुए हैं । मैं इस सम्पादकीय के माध्यम से अदालतों में लम्बित **सिविल के करोड़ों मुकदमों** के शीघ्र निस्तारण के तरीके का सुझाव देना चाहता हूं । अदालतों में लम्बित सिविल के करोड़ों मुकदमों का निस्तारण मात्र माध्यस्थम् द्वारा ही संभव है । इसके लिए न्यायालयों को सिविल के किसी भी वाद के दोनों पक्षों की ओर से नियुक्त उनके अधिवक्ताओं को ही मध्यस्थ् नियुक्त कर देना चाहिए और तीसरे मध्यस्थ के रूप में किसी ऐसे अधिवक्ता की नियुक्ति करनी चाहिए जो दोनों पक्षों से किसी भी प्रकार से संबद्ध न हों अर्थात् पूर्णतया तटस्थ हो । इस प्रकार से तीन मध्यस्थों का माध्यस्थम् अधिकरण गठित हो जाएगा । न्यायालय वाद-बिन्दु निर्धारित करके मामला माध्यस्थम् अधिकरण को सौंप देगा और माध्यस्थम् अधिकरण न्यायालय द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर आगे की सम्पूर्ण कार्यवाही करके अपना पंचाट मामले की फाइल के साथ न्यायालय को लौटा देगा । तत्पश्चात् न्यायालय माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा पारित पंचाट के आधार पर डिक्री पारित कर देगा और पंचाट को डिक्री का भाग बना देगा । इस प्रकार से जहां एक तरफ न्यायालय के समय की बचत होगी और न्यायाधीश अपने समय का सदुपयोग **दांडिक मामलों के निस्तारण** में कर सकेंगे, वहीं पक्षों को अपने ही अधिवक्ताओं की मध्यस्थ के रूप में उपस्थिति में तीव्र गति से न्याय मिल सकेगा । माध्यस्थम् अधिकरण अपनी सुविधानुसार वाद की सुनवाई का समय और स्थान निर्धारित कर सकेगा और दोनों पक्षों की उपस्थिति में माध्यस्थम् की कार्यवाही सुनिश्चित कर सकेगा । पक्षों को बार-बार मामले की सुनवाई स्थगित होने वाली परेशानी से भी मुक्ति मिलेगी । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रक्रिया से न

तो न्यायाधीशों या न्यायालयों की संख्या बढ़ानी पड़ेगी और न ही सरकारी खजाने पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा और साथ ही जनता को समय से न्याय भी सुलभ होगा । विधि मंत्रालय और न्यायपालिका को इस दिशा में गंभीरतापूर्वक मंत्रणा करनी चाहिए । **सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 में मामूली सा संशोधन करके इस कार्य को सुलभ बनाया जा सकता है ।**

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अनुसूइया सीताराम बादीगर और अन्य **बनाम** नसीर उद्दीन अमीन उद्दीन अमीन नायक	632
अमरजीत सिंह और एक अन्य **बनाम** सुरिन्दर सिंह अरोड़ा और एक अन्य	689
आर. रामासुब्बू **बनाम** टी. प्रसन्ना और एक अन्य	716
कुनाल रनावत **बनाम** रविता जहान रनावत	751
के. गुरुसामी **बनाम** जी. मल्लिगा	708
नागाराजू एस. एम. और अन्य **बनाम** एडवोकेट एसोसिएट्स (रजि.) कोर्ट कम्पलेक्स, चन्नापटना टाउन और अन्य	637
परमेश्वर राय और एक अन्य **बनाम** रामेश्वर राय	611
प्रशान्त कुमार मिश्रा **बनाम** श्रीमती सूर्यामणि मिश्रा	619
बाम्बे प्लास्टर इंडस्ट्रीज (मैसर्स), बीकानेर **बनाम** जगदम्बा प्लास्टर, बीकानेर	723
मृत्युंजय चक्रवर्ती **बनाम** शीला चक्रवर्ती	683
रेमो साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स), बैंगलूरू और अन्य **बनाम** एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड	646
विद्यावती देवी (श्रीमती) **बनाम** धनन्जय कुमार पांडेय	678
वी. विद्या **बनाम** राज्य सूचना आयुक्त, चेन्नई और एक अन्य	697
सहीदुन निसा (सुश्री) **बनाम** उप राज्यपाल	664

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 19

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25)

– धारा 26(1) और 28 सपठित बार कौंसिल आफ इंडिया रूल्स का अध्याय 7 – अधिवक्ता संगम का निर्वाचन – मतदाता सूची का पुनरीक्षण – निर्वाचन – अधिकारी की शक्तियां – संगम की उप-विधियां संगम के महासचिव को मतदाता सूची के संबंध में आक्षेप आहूत करने और सूची को पुनरीक्षण करने की शक्तियां प्रदत्त करती है न कि निर्वाचन अधिकारी को – कर्नाटक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और इसके अधीन विरचित उप-विधियां भी निर्वाचन अधिकारी को मतदाता-सूची को पुनरीक्षित करने या किसी सदस्य का नाम निरसित करने की शक्तियां प्रदत्त नहीं करतीं ।

नागाराजू एस. एम. और अन्य बनाम **एडवोकेट एसोसिएट्स (रजि.) कोर्ट कम्पलेक्स, चन्नापटना टाउन और अन्य** 637

– धारा 26(1) सपठित बार कौंसिल आफ इंडिया रूल्स का अध्याय 7 – अधिवक्ता संगम का निर्वाचन – निर्वाचन अधिकारी द्वारा बार सदस्यों से कतिपय बिन्दुओं पर शपथपत्र और विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र मांगा जाना – विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र जारी न किए जाने के कारण शर्त का अनुपालन संभव न होना – विकल्प के रूप में उत्तीर्ण प्रमाणपत्र की मांग – ऐसा निदेश किया जाना उचित है ।

नागाराजू एस. एम. और अन्य बनाम **एडवोकेट एसोसिएट्स (रजि.) कोर्ट कम्पलेक्स, चन्नापटना टाउन और अन्य** 637

पण्य चिन्ह अधिनियम, 1999 (1999 का 47)

– धारा 27 – चला देने की कार्यवाही के कारण भ्रम की संभाव्यता – यह अभिवाक् कि प्रतिवादी का पण्य चिन्ह "हाई-टेक" वादी के पण्य चिन्ह "हाई-टेक" के विरुद्ध धोखा देने वाली समरूपता रखता है किन्तु अभिलेख पर ऐसी कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई जिसके आधार

पृष्ठ संख्या

पर यह कहा जा सके कि प्रतिवादी का पण्य चिन्ह भ्रम उत्पन्न कर रहा है – एकल रंग का प्रयोग, जिसके, आधार पर प्रतिवादी को वाणिज्यिक बेईमानी के लिए दोषी ठहराया जा सके अन्तर्निहित रूप से सुभिन्न नहीं माना जा सकता – चला देने की कार्यवाही पोषणीय नहीं हैं ।

बाम्बे प्लास्टर इंडस्ट्रीज (मैसर्स), बीकानेर बनाम **जगदम्बा प्लास्टर, बीकानेर** 723

– धारा 27 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 39, नियम 1 और 2] – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के बाबत स्थायी व्यादेश जारी किए जाने के लिए फाइल किए गए वाद में विलम्ब – वादी द्वारा प्रतिवादी को धोखा देने वाली समानता रखने वाले पण्य चिन्ह "हाई-टेक" का प्रयोग करने से निषेधित किए जाने के लिए अनुतोष की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा पूर्ववर्ती वाद वापस लिया जाना और बाद में नया वाद फाइल किया जाना और नया वाद फाइल किए जाने में कारित पांच वर्षों के विलम्ब का स्पष्टीकरण न दिया जाना – प्रतिवादी के विरुद्ध विगत पांच वर्षों से किसी निरोधादेश का प्रभाव में न होना – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के लिए फाइल किया गया वाद पोषणीय नहीं है ।

बाम्बे प्लास्टर इंडस्ट्रीज (मैसर्स), बीकानेर बनाम **जगदम्बा प्लास्टर, बीकानेर** 723

– धारा 27 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 39, नियम 1 और 2] – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के बाबत अस्थायी व्यादेश का अनुतोष – प्रतिवादी को धोखा देने वाली समानता रखने वाले पण्य चिन्ह "हाई-टेक" का अभिकथित रूप से प्रयोग करने से निषेधित किया जाना – "हाई-टेक" सामान्य शब्द है और इसका अर्थान्वयन प्रतिवादी द्वारा धोखा देने वाली कार्यवाही के संबंध में नहीं किया जा सकता – बेईमानीपूर्ण आशय और बुरी नियत के साथ समान शब्दों के प्रयोग को साबित न किया जाना – अस्थायी व्यादेश का अनुतोष प्रदान नहीं

पृष्ठ संख्या

किया जा सकता ।

बाम्बे प्लास्टर इंडस्ट्रीज (मैसर्स), बीकानेर बनाम **जगदम्बा प्लास्टर, बीकानेर** 723

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 5 – अपील फाइल करने में 25 दिन का विलंब – विलंब माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन – न्यायालय द्वारा प्रथमतः अपील मंजूर करके बाद में पृथक् आदेश-पत्रक पर विलंब माफी का आदेश पारित किया जाना – विलंब माफ करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया पूर्णतया अनुचित है क्योंकि प्रथमतः विलंब माफ करने के पश्चात् ही अपील गुण-दोष पर सुनी जानी चाहिए ।

अनुसूइया सीताराम बादीगर और अन्य बनाम **नसीर उद्दीन अमीन उद्दीन अमीन नायक** 632

भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (1899 का 2)

– धारा 33 – याची द्वारा साक्ष्य में मूल दस्तावेज पेश न करके द्वितीयक साक्ष्य के रूप में फोटो प्रतियां पेश की जानी – दस्तावेजों की ग्राह्यता के संबंध में आक्षेप – न्यायालय द्वारा आक्षेप का वाद के अंतिम निपटान के समय न्यायनिर्णयन किए जाने हेतु स्थगन – न्यायालय का वाद के अंतिम निपटान के समय आवेदन पर न्यायनिर्णयन स्थगित करना न्यायोचित नहीं है ।

अमरजीत सिंह और एक अन्य बनाम **सुरिन्दर सिंह अरोड़ा और एक अन्य** 689

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (2007 का 56)

– वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण – यदि वृद्ध दंपत्ति/पिता-माता यदि अपने बच्चों के साथ प्रसन्न नहीं हैं और उनके मध्य समझौते और शांतिपूर्ण जीवनयापन की समस्त संभाव्यताएं समाप्त हो चुकी हैं, तो बच्चों को माता-पिता की संपत्ति को रिक्त करने के लिए

पृष्ठ संख्या

निर्देशित किया जा सकता है और अधिनियम में निष्कासन आदेश पारित किए जाने से विवर्जित नहीं किया गया है ।

सहीदुन निसा (सुश्री) बनाम **उप राज्यपाल** 664

– धारा 22(2), 2(च) – वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण – संपत्ति की परिभाषा में वरिष्ठ नागरिकों की संपत्ति में जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित मूर्त या अमूर्त सम्पत्ति में अधिकार या हित का सम्मिलित होना – संपत्ति के स्वामित्व के वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे किसी सम्पत्ति के स्वामित्व के संबंध में किसी कानून की योजना के अंतर्गत संरक्षण की ईप्सा करें ।

सहीदुन निसा (सुश्री) बनाम **उप राज्यपाल** 664

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) (2016 के संशोधन अधिनियम संख्या 44 द्वारा यथासंशोधित)

– धारा 13(2), 17(4क) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – वित्तीय संस्था द्वारा संपत्ति स्वामी/मकान मालिक से अधिशेष ऋण की वसूली की ईप्सा किया जाना और इस प्रयोजनार्थ उनके द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लिए जाने को कर्जदार द्वारा अनुकल्पिक अनुतोष की उपलब्धता के आधार पर चुनौती दिया जाना – मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का भौतिक कब्जा वित्तीय संस्था को सौंपे जाने के लिए कर्जदार को निर्देशित किया जाना – चूंकि कर्जदार/किराएदारों को प्रतिभूत आस्तियों पर अधिकारिता प्राप्त ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा अनुकल्पित अनुतोष उपलब्ध है, अतः उनके द्वारा इस प्रयोजनार्थ संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका पोषणीय नहीं है ।

रेमो साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स), बैंगलूरू और अन्य बनाम **एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड** 646

पृष्ठ संख्या

– धारा 13(2), 14, 17(4क) – प्रतिभूत आस्तियों, जिनमें किराएदार कब्जे में हैं, का कब्जा लिए जाने की प्रक्रिया – मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लिया जाना जिनके अन्तर्गत वह कर्जदार और संपत्ति के अधिभोगियों/किराएदारों को नोटिस जारी करने के लिए बाध्य है – वह मात्र वित्तीय संस्था द्वारा उसके समक्ष फाइल किए गए शपथपत्र के आधार पर कब्जा दिलाए जाने की कार्यवाही नहीं कर सकता – कर्जदारों को ऐसे किसी भी शपथपत्र का खंडन करने का अधिकार प्राप्त है, अतः ऋण वसूली अधिकरण से यह अपेक्षित होता है कि वे प्रतिभूत आस्ति में बसे हुए अधिभोगियों/किराएदारों के सद्भावी होने के प्रश्न को निर्णीत करें – साथ ही किराएदारों को यह अधिकार नहीं है कि वे वित्तीय संस्था द्वारा चूककर्ता कर्जदार के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ किए जाने का विरोध करें ।

रेमो साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स), बैंगलूरू और अन्य बनाम **एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड** 646

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 12 – करार – अननुपालन – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विक्रेता के मुख्तार-अभिकर्ता की जानकारी के बिना भूमि के क्षेत्र और प्रतिफल के बारे में तात्विक परिवर्तन – वादी के काउंसेल द्वारा प्रेषित नोटिस में करार की तारीख प्रतिफल की राशि, संदत्त अग्रिम धनराशि और शेष प्रतिफल के बारे में कोई उल्लेख न किया जाना – वादी न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से न आने के कारण विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हकदार नहीं है ।

आर. रामासुब्बू बनाम **टी. प्रसन्ना और एक अन्य** 716

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 63 और 65 – द्वितीयक साक्ष्य – दस्तावेज की फोटो प्रति – ग्राह्यता – पक्षकार द्वारा मूल दस्तावेज को

पृष्ठ संख्या

खोने का अभिकथन किया जाना – तथ्यात्मक आधार के बिना द्वितीयक साक्ष्य अग्राह्य है ।

अमरजीत सिंह और एक अन्य बनाम **सुरिन्दर सिंह अरोड़ा और एक अन्य** 689

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 47 – बेदखली डिक्री – निष्पादन – डिक्री के निष्पादन से संबंधित संपत्ति आवासीय बोर्ड की मिलकियत होना – डिक्रीधारक के पास संपत्ति पट्टे पर होना – आवासीय बोर्ड द्वारा डिक्री के निष्पादन पर कोई आक्षेप न किया जाना – डिक्री त्रुटिपूर्ण क्षेत्रीय अधिकारिता से ग्रसित या शून्य न होना – ऐसी डिक्री पूर्णतया निष्पादनीय है ।

परमेश्वर राय और एक अन्य बनाम **रामेश्वर राय** 611

– धारा 96 – मूल डिक्री के विरुद्ध अपील – विचारण न्यायालय द्वारा वाद की खारिजी और विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील – पक्षकारों को बहस का अवसर दिए बिना अपील की मंजूरी – अपील न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अनुज्ञेय नहीं है – अपील न्यायालय द्वारा पक्षकारों को गुण-दोष पर सुनने के पश्चात् ही अपना निर्णय देना चाहिए ।

अनुसूइया सीताराम बादीगर और अन्य बनाम **नसीर उद्दीन अमीन उद्दीन अमीन नायक** 632

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 6(1) और 24(4) – याची द्वारा सी. बी. सी. आई. डी. द्वारा की गई जांच के निष्कर्ष की प्रति, भेजे गए समनों की प्रति तथा जांच के दौरान एकत्रित सामग्री की प्रतियां मांगी जानी – प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 24(4) और तमिलनाडु सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश का अवलंब लिया जाना – याची द्वारा मांगी गई सूचना में गोपनीय जांच की विशिष्टियां सम्मिलित होना – अधिनियम की धारा 24(4) के अधीन सुरक्षा संगठनों को

पृष्ठ संख्या

कतिपय मामलों में छूट दिए जाने के कारण ऐसी सूचना प्रदत्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ।

वी. विद्या बनाम **राज्य सूचना आयुक्त, चेन्नई और एक अन्य** 697

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद-मानसिक क्रूरता का अभिवाक् – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध यह अभिवाक् किया जाना कि वह उस पर पिता से पृथक् रहने के लिए दबाव दे रही थी – यह तथ्य भी साबित होना कि पत्नी ने यह स्वीकार किया था कि वह दूसरे व्यक्ति से गर्भवती हो गई थी – चूंकि पति द्वारा क्रूरता का तथ्य साबित कर दिया गया है अतः पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ।

प्रशान्त कुमार मिश्रा बनाम **श्रीमती सूर्यामणि मिश्रा** 619

– धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पति द्वारा पत्नी पर क्रूरता बरतने का आरोप – पति द्वारा अर्जी में या अभिवचनों में पत्नी के विरुद्ध जारकर्म का कोई अभिवचन न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा जारकर्म का विवाद्यक विरचित किया जाना – पक्षकारों द्वारा जारकर्म के विवाद्यक के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना – न्यायालय द्वारा जारकर्म का आधार साबित मानते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जानी – ऐसे किसी निर्णय या डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता – मामले को प्रतिप्रेषित किया जाना उचित होगा ।

विद्यावती देवी (श्रीमती) बनाम **धनन्जय कुमार पांडेय** 678

– धारा 13(1)(i-क) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन – पति द्वारा शहर में नियोजित होने के कारण पत्नी को अपने माता-पिता के गांव अर्थात् ससुराल के मकान में रहने के लिए मजबूर किया जाना – पत्नी द्वारा बेहतर जीवन जीने के लिए पति के साथ रहने के लिए बल देना – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता का अभिवाक् – अपने पति के साथ रहने के लिए बल देना क्रूरता

पृष्ठ संख्या

गठित नहीं करता – अतः विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है ।

मृत्युंजय चक्रवर्ती बनाम **शीला चक्रवर्ती** 683

– धारा 13ख(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 तथा संविधान, 1950 का अनुच्छेद 142] – आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी – छह मास की उपशमन अवधि की कानूनी अपेक्षा – पक्षकारों द्वारा विचारण न्यायालय से उक्त कानूनी अवधि को त्यक्त करके विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए अनुरोध – विधिमान्यता – अधिनियम के अधीन उक्त छह मास की प्रतीक्षा अवधि को केवल उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग में त्यक्त किया जा सकता है न कि निचले न्यायालयों या उच्च न्यायालय द्वारा ।

कुनाल रनावत बनाम **रविता जहान रनावत** 751

– धारा 24 और हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) – धारा 18(2)(च) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए वाद – पत्नी द्वारा वाद के लंबन के दौरान भरणपोषण और मुकदमेबाजी के खर्चे की मांग करते हुए आवेदन – पति द्वारा इस आधार पर इनकार किया जाना कि पत्नी ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है – विधिमान्यता – ऐसे किसी आधार पर पत्नी को भरणपोषण और मुकदमेदारी का खर्चा देने से इनकार नहीं किया जा सकता – तथापि, न्यायालय को पक्षकारों की हैसियत, वित्तीय और दायित्वों को ध्यान में रखना चाहिए ।

के. गुरुसामी बनाम **जी. मल्लिगा** 708

– धारा 25 – पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी – पत्नी द्वारा स्थायी निर्वाहिका और भरणपोषण मांगा जाना – न्यायालय विवाह-विच्छेद की अर्जी मंजूर करने के साथ पत्नी के जीवन-निर्वाह के लिए एकमुश्त धनराशि मंजूर कर सकता है ।

प्रशान्त कुमार मिश्रा बनाम **श्रीमती सूर्यामणि मिश्रा** 619

परमेश्वर राय और एक अन्य

बनाम

रामेश्वर राय

तारीख़ 21 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 47 – बेदखली डिक्री – निष्पादन – डिक्री के निष्पादन से संबंधित संपत्ति आवासीय बोर्ड की मिलकियत होना – डिक्रीधारक के पास संपत्ति पट्टे पर होना – आवासीय बोर्ड द्वारा डिक्री के निष्पादन पर कोई आक्षेप न किया जाना – डिक्री त्रुटिपूर्ण क्षेत्रीय अधिकारिता से ग्रसित या शून्य न होना – ऐसी डिक्री पूर्णतया निष्पादनीय है ।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस याचिका द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), राउरकेला द्वारा 2010 के निष्पादन मामला सं. 2 में क्रमशः तारीख 23 जून, 2016, 27 सितंबर, 2016 और 5 नवंबर, 2016 को किए गए आदेशों को आक्षेपित किया गया है । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने तारीख 23 जून, 2016 के आदेश द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित धारा 47 के अधीन निर्णीत-ऋणियों के आवेदन को खारिज किया है, जबकि तारीख 27 सितंबर, 2016 के आदेश द्वारा निर्णीत-ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन फाइल आवेदन को खारिज किया गया है । तारीख 5 नवंबर, 2016 के आदेश द्वारा निर्णीत-ऋणियों को एक मास के भीतर वाद से संबंधित मकान खाली करने के लिए निदेश दिया गया है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद संपत्ति डिक्रीधारक के नाम में पट्टे पर दी गई है । निर्णीत-ऋणी ने यह साबित करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है कि यह संपत्ति संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति है । आश्चर्यजनक रूप से ओडिशा राज्य आवास

बोर्ड ने डिक्री के निष्पादन को खारिज करने के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया है । प्रतिवादियों द्वारा किए गए इस कथन को कि वाद संपत्ति संयुक्त कुटुम्बीय संपत्ति है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा नकार दिया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अंतिम बन गई है । ऐसा केवल कुछ मामलों में है जहां अंतर्निहित अधिकारिता न रखने वाले किसी न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की गई हो या इस प्रकार अकृत हो गई हो कि उसका अस्तित्व ही न रहे और इस प्रकार अनिष्पादनीय बन जाए । कोई त्रुटिपूर्ण डिक्री ऐसी डिक्री के बराबर नहीं हो सकती जो अकृत है । ऐसी कोई अंतर्वर्ती वृद्धियां नहीं हुई हैं जिससे कि डिक्री अनिष्पादनीय बन जाए । यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि संहिता की धारा 47 के अधीन शक्ति का प्रयोग सूक्ष्म है और गहराई से इसका निरीक्षण नहीं किया जाना है और कोई निष्पादन न्यायालय डिक्री के निष्पादन के संबंध में तभी आक्षेप अनुज्ञात कर सकता है जब यह पाया जाए कि यह आरंभतः शून्य है और अकृत है, सिवाय इस आधार के कि यह विधि के अधीन निष्पादन योग्य नहीं है क्योंकि वह विधि के उपबंधों की उपेक्षा करके पारित की गई है या वह इसके पारित किए जाने के पश्चात् निष्पादनीय नहीं रह जाती है । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए याचिका में कोई बल नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार याचिका खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । (पैरा 7, 8 और 9)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1577 : **मैसर्स ब्रेकवेल आटोमेटिव कम्पोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पी. आर. सेलवम अलगप्पन** । 6, 8

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2016 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 1933.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री एन. के. साहू

प्रत्यर्थी की ओर से श्री आर. के. मोहंती, वरिष्ठ अधिवक्ता

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ – भारत के संविधान के अनुच्छेद 227

के अधीन इस याचिका द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), राउरकेला द्वारा 2010 के निष्पादन मामला सं. 2 में क्रमशः तारीख 23 जून, 2016, 27 सितंबर, 2016 और 5 नवंबर, 2016 को किए गए आदेशों को आक्षेपित किया गया है । विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने तारीख 23 जून, 2016 के आदेश द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित धारा 47 के अधीन निर्णीत-ऋणियों के आवेदन को खारिज किया है, जबकि तारीख 27 सितंबर, 2016 के आदेश द्वारा निर्णीत-ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन फाइल आवेदन को खारिज किया गया है । तारीख 5 नवंबर, 2016 के आदेश द्वारा निर्णीत-ऋणियों को एक मास के भीतर वाद से संबंधित मकान खाली करने के लिए निदेश दिया गया है ।

2. विरोधी पक्षकार ने वादी के रूप में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), पनपोश के न्यायालय में वाद अनुसूची में दिए गए मकान के ऊपर अपने अधिकार, हक, हित और कब्जे की पुष्टि की घोषणा के लिए तथा कब्जे की वापसी के लिए यदि मुकदमे के दौरान उसे बेकब्जा किया गया पाया जाए याचियों को प्रतिवादियों के रूप में पक्षकार बनाते हुए 2001 का टी. एस. सं. 40 संस्थित किया था । प्रतिवादियों ने वादपत्र में किए गए प्रकथनों से इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया । वाद डिक्री किया गया था । प्रतिवादियों ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को आक्षेपित करते हुए 2007 की आर. एफ. ए. सं. 45 फाइल की थी । अपील मंजूर की गई थी और वाद विद्वान् विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् वाद पुनः डिक्री किया गया था । प्रतिवादियों ने उक्त निर्णय के विरुद्ध विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, राउरकेला के समक्ष अपील फाइल की । चूंकि उक्त अपील खारिज की गई थी इसलिए उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष 2010 की आर. एस. ए. सं. 329 फाइल की थी । अपील खारिज की गई थी । तारीख 26 जून, 2010 को डिक्रीधारक ने 2004 का निष्पादन मामला सं. 2 फाइल किया । निर्णीत-ऋणियों ने डिक्री के निष्पादन को आक्षेपित करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । डिक्रीधारक ने आक्षेप फाइल किया । निष्पादन न्यायालय ने तारीख 23 जून, 2016 को अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि आवेदन परिसीमा से वर्जित होने के कारण ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । निर्णीत-ऋणियों ने उक्त आदेश को

आक्षेपित करते हुए प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, राउरकेला के समक्ष 2016 का सिविल पुनरीक्षण सं. 5 फाइल किया । पुनरीक्षण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पुनरीक्षण ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । निर्णीत-ऋणियों ने इसे दृष्टिगत करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन 2016 का अंतरिम आवेदन सं. 2 फाइल किया जिसमें उन्होंने निष्पादन न्यायालय में डिक्री के निष्पादन को आक्षेपित किया था । यह आवेदन तारीख 27 सितंबर, 2016 को खारिज कर दिया गया था ।

3. याचियों के विद्वान् अधिवक्ता श्री साहू ने यह दलील दी है कि विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने निर्णीत-ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को परिसीमा से बाहर होने के रूप में खारिज करने में स्पष्ट अवैधता और अनियमितता कारित की है । उन्होंने यह दलील दी कि प्रतिवादियों ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, राउरकेला के समक्ष 2007 की आर. एफ. ए. सं. 45 फाइल की थी । जिसे खारिज किए जाने पर उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष 2010 की आर. एस. ए. सं. 329 फाइल की । यह अपील तारीख 2 सितंबर, 2015 को खारिज कर दी गई । अतः निर्णीत-ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल आवेदन पूर्णतया समय के भीतर था । उन्होंने यह भी दलील दी कि वाद से संबंधित संपत्ति ओडिशा राज्य आवास बोर्ड की संपत्ति है । यद्यपि संपत्ति डिक्रीधारक के हक में पट्टे पर दी गई थी तथापि, यह एक संयुक्त कुटुंब की संपत्ति है । ओडिशा राज्य आवास बोर्ड को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था । अतः डिक्री अकृत है ।

4. इसके प्रतिकूल विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मोहंती ने यह दलील दी कि डिक्री अंतिम बन गई है । डिक्रीधारक ने निष्पादन मामला फाइल किया था । निर्णीत-ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल आवेदन खारिज किया गया था । तत्पश्चात् इसी अनुतोष का अनुरोध करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया ।

5. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 की उपधारा (1) यह उपबंध करती है कि वे सभी प्रश्न, जो उस वाद के पक्षकारों के या उनके प्रतिनिधियों के बीच पैदा होते हैं, जिसमें डिक्री पारित की गई थी और जो

डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन या तुष्टि से संबंधित हैं, डिक्री का निष्पादन करने वाले न्यायालय द्वारा, न कि पृथक् वाद द्वारा, अवधारित किए जाएंगे ।

6. उच्चतम न्यायालय ने **मैसर्स ब्रेकेवेल आटोमेटिव कम्पोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पी. आर. सेलवम अलगप्पन**[1] वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 का निर्वचन करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "19 अब यह बात अनिर्णीत नहीं रही है कि कोई निष्पादन न्यायालय न तो डिक्री के पीछे भाग सकता है और न ही इस पर अपील के रूप में विचार कर सकता है और न ही पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करते हुए कोई आदेश पारित कर सकता है । ऐसे कुछ ही मामले हैं जहां किसी न्यायालय द्वारा अन्तर्निहित अधिकारिता के अभाव में डिक्री को अकृत घोषित किया हो या इसके अस्तित्व को नकारा हो और इसलिए वह निष्पादन के योग्य नहीं हो । कोई त्रुटिपूर्ण डिक्री उस डिक्री के समान नहीं हो सकती जो कि अकृत है । ऐसा कोई मध्यांतर संवृद्धि नहीं हुई है जो डिक्री को अनिष्पादनीय बना दे ।
>
> 20. चूंकि संहिता की धारा 47 किसी निष्पादन न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए व्यदेशित करती है इसलिए डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन या तुष्टि के संबंध में निष्पादन से संबंधित पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच प्रश्न उद्भूत होते हैं और इसके बाहर किसी न्यायनिर्णयन को अनुध्यात नहीं करती । चूंकि विधि के न्यायालय की कोई डिक्री अलंघनीय प्रकृति की होती है इसलिए इसके निष्पादन को मात्र अनुरोध के आधार पर और अस्वीकार्य और तात्पर्यत आधारों पर जिनका उसकी विधिमान्यता या निष्पादनीयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो, त्यक्त नहीं किया जाना चाहिए ।
>
> 21. इस आशय के न्यायिक निर्णय कि डिक्री के संबंध में संहिता की धारा 47 के अधीन जांच की परिधि ऐसे आक्षेपों तक परिसीमित है जो अधिकारिता संबंधी अनियमितता या शून्यता के आधार पर निष्पादकता से संबंधित हों, बहुत कम हैं । इस न्यायालय ने कतिपय अन्य मामलों के अतिरिक्त वासुदेव धनजी भाई मोदी

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1577.

बनाम राजा भाई अब्दुल रहमान और अन्य, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1475 = [1971] 1 एस. सी. आर. 66 वाले मामले में बल देकर यह मत व्यक्त किया कि केवल ऐसी डिक्री जो अकृत है, संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप की विषयवस्तु हो सकती है, न कि ऐसी डिक्री जो विधित: या तथ्यत: त्रुटिपूर्ण है । इस संबंध में निर्णय का निम्नलिखित भाग उद्धृत किया जा सकता है –

> 'किसी डिक्री का निष्पादन करने वाला कोई न्यायालय पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच डिक्री पर विचार नहीं कर सकता ; उसे डिक्री की अवधि के अनुसार कार्यवाही करनी चाहिए और इस संबंध में कोई आक्षेप ग्रहण नहीं किया जा सकता कि डिक्री विधितः या तथ्यतः सही नहीं है । किसी डिक्री को जब तक अपील या पुनरीक्षण में समुचित कार्यवाहियों द्वारा अपास्त न किया जाए तब तक ऐसी डिक्री भले ही वह त्रुटिपूर्ण हो, पक्षकारों के बीच आबद्धकर है ।
>
> उदाहरण के रूप में जहां कोई डिक्री अकृत है और जहां यह ऐसे किसी व्यक्ति के जिसकी डिक्री की तारीख़ को मृत्यु हो चुकी थी, अभिलेख पर विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाए बिना पारित की जाती है या किसी प्रमाणपत्र के बिना किसी राज करने वाले राजकुमार के विरुद्ध पारित की जाती है, इस संबंध में निष्पादन किए जाने में कोई आक्षेप किया जाता है, वहां निष्पादन के लिए कार्यवाहियों में आक्षेप किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त जहां किसी ऐसे न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की जाती है जिसे ऐसी डिक्री पारित करने की अन्तर्निहित अधिकारिता नहीं है वहां निष्पादन कार्यवाही में इसकी विधिमान्यता के संबंध में आक्षेप किया जा सकता है यदि आक्षेप अभिलेख पर स्पष्ट प्रतीत होता हो – जहां डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में आक्षेप अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या प्रतीत नहीं होता है और प्रश्नों की परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है और विचारण में विनिश्चय किया जाना है या जो आक्षेप किया जा सकता था किंतु नहीं किया गया है तो निष्पादन न्यायालय को अधिकारिता के अभाव के आधार पर भी डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में आक्षेप ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी ।'

22. यद्यपि इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में अभिव्यक्त यह मत पुराना हो गया है, तथापि, धुरन्दर प्रसाद सिंह **बनाम** जय प्रकाश विश्वविद्यालय और अन्य, ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2552 वाले मामले में संहिता की धारा 47 की परिधि पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया गया है कि निष्पादन न्यायालय की शक्तियां पूर्णतः भिन्न हैं और अपील/पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन की अपेक्षा अत्यंत कम हैं। यह दोहराया गया था कि संहिता की धारा 47 के अधीन शक्ति का प्रयोग सूक्ष्म है और इस पर गहराई से विचार किए जाने की आवश्यकता है और कोई निष्पादन न्यायालय डिक्री की निष्पादनीयता के संबंध में आक्षेप मंजूर कर सकता है जब उसे यह प्रतीत होता हो कि ऐसी डिक्री आरंभतः शून्य है, इस आधार के अतिरिक्त कि वह विधि के अधीन निष्पादन योग्य नहीं है, या तो वह विधि के ऐसे उपबंध की उपेक्षा करके पारित की गई है या डिक्री पारित करने के पश्चात् यह अनिष्पादनीय बन गई है। उपर्युक्त परिस्थितियों के सिवाय जैसी कि विधि में मान्यता दी गई है, कोई डिक्री अनिष्पादनीय नहीं बन जाती है जैसाकि वर्तमान मामले में है। उपर्युक्त कारणों से हम इस मत के हक़ में विभिन्न विनिश्चयों का उल्लेख करके इस न्यायनिर्णयन को बोझल नहीं बनाना चाहते हैं।

23. संदर्भित तथ्यों और प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए आक्षेपों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह निश्चित मत है कि डिक्री के विरुद्ध या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के आवेदन के विरुद्ध आपत्ति ग्रहण करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है। हमारे मतानुसार निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने ही न केवल सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 की व्याप्ति और क्षेत्र का निर्वचन करने में गलती की है अपितु इस तथ्य की भी उपेक्षा की है कि डिक्री किसी अधिकारिता संबंधी त्रुटि से या विधि में अन्यथा अविधिमान्य होने से ग्रसित नहीं है। प्रतिवादी द्वारा निष्पादन आवेदन में किए गए आक्षेप तथा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप डिक्री के लिए किसी सारभूत प्रतिरक्षा को प्रकट नहीं करते या किसी अधिकारिता संबंधी अनियमितता या अविधिमान्यता की शर्त को पूरा नहीं करते। अतः ये आक्षेप खारिज किए जाते हैं।

24. सभी सुसंगत पहलुओं पर सतर्कतापूर्वक विचार करने के पश्चात् हम आक्षेपित आदेशों को कायम नहीं रख सकते हैं और

एतद्द्वारा इन्हें अपास्त करते हैं । अपीलें मंजूर की जाती हैं । निष्पादन न्यायालय निष्पादन कार्यवाहियों में कार्यवाही करेगा और शीघ्रता से इन्हें तर्कपूर्ण रूप से निपटाएगा । खर्चों का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

7. ऊपर उद्धृत विनिश्चय को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान मामले की परीक्षा की जा सकती है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद संपत्ति डिक्रीधारक के नाम में पट्टे पर दी गई है । निर्णीत-ऋणी ने यह साबित करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है कि यह संपत्ति संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति है । आश्चर्यजनक रूप से ओडिशा राज्य आवास बोर्ड ने डिक्री के निष्पादन को खारिज करने के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया है । प्रतिवादियों द्वारा किए गए इस कथन को कि वाद संपत्ति संयुक्त कुटुम्बीय संपत्ति है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा नकार दिया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अंतिम बन गई है ।

8. उच्चतम न्यायालय ने मैसर्स **ब्रेकवेल आटोमेटिव कम्पोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पी. आर. सेलवम अलगप्पन**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यह बात अब अनिर्णीत नहीं रही है कि कोई निष्पादन न्यायालय न तो डिक्री पर विचार कर सकता है और न ही अपील न्यायालय के समान कार्यवाही कर सकता है और न ही मामले के पक्षकारों के अधिकारों के प्रतिकूल कोई आदेश पारित कर सकता है । ऐसा केवल कुछ मामलों में है जहां अंतर्निहित अधिकारिता न रखने वाले किसी न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की गई हो या इस प्रकार अकृत हो गई हो कि उसका अस्तित्व ही न रहे और इस प्रकार अनिष्पादनीय बन जाए । कोई त्रुटिपूर्ण डिक्री ऐसी डिक्री के बराबर नहीं हो सकती जो अकृत है । ऐसी कोई अंतर्वर्ती वृद्धियां नहीं हुई हैं जिससे कि डिक्री अनिष्पादनीय बन जाए । यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि संहिता की धारा 47 के अधीन शक्ति का प्रयोग सूक्ष्म है और गहराई से इसका निरीक्षण नहीं किया जाना है और कोई निष्पादन न्यायालय डिक्री के निष्पादन के संबंध में तभी आक्षेप अनुज्ञात कर सकता है जब यह पाया जाए कि यह आरंभतः शून्य है और अकृत है, सिवाय इस आधार के कि यह विधि के अधीन निष्पादन योग्य नहीं है क्योंकि वह विधि के उपबंधों की उपेक्षा करके पारित की गई है या वह इसके पारित किए जाने के पश्चात् निष्पादनीय नहीं रह जाती है ।

---

[1] ए. आई आर. 2017 एस. सी. 1577.

9. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए याचिका में कोई बल नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार याचिका खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2018) 1 सि. नि. प. 619　　　उड़ीसा

प्रशान्त कुमार मिश्रा

बनाम

श्रीमती सूर्यामणि मिश्रा

तारीख़ 11 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद-मानसिक क्रूरता का अभिवाक् – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध यह अभिवाक् किया जाना कि वह उस पर पिता से पृथक् रहने के लिए दबाव दे रही थी – यह तथ्य भी साबित होना कि पत्नी ने यह स्वीकार किया था कि वह दूसरे व्यक्ति से गर्भवती हो गई थी – चूंकि पति द्वारा क्रूरता का तथ्य साबित कर दिया गया है अतः पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 25 – पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी पत्नी द्वारा स्थायी निर्वाहिका और भरणपोषण मांगा जाना – न्यायालय विवाह-विच्छेद की अर्जी मंजूर करने के साथ पत्नी के जीवन-निर्वाह के लिए एकमुश्त धनराशि मंजूर कर सकता है ।

अपीलार्थी-वादी ने अपनी पत्नी से विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया था जो विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया । वादी-अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर विद्वान् जिला न्यायाधीश, अंगुल के न्यायालय में अपील फाइल की । स्थानांतरण पर विद्वान् अपर न्यायाधीश, अंगुल ने अपील की सुनवाई के पश्चात् अपील खारिज कर दी । अतः अपीलार्थी ने वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की ।

अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादपत्र के सरसरी परिशीलन मात्र से स्पष्ट होता है कि वादी ने यह अभिवाक् किया है कि प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने के लिए धमकी दी थी और प्रत्यर्थी ने यह भी बताया था कि वह विवाह के पूर्व गर्भवती हो गई थी । वादी ने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि विवाह के 5 मास के पश्चात् प्रत्यर्थी पृथक् रहने के लिए दबाव देने लगी । जब उसने इनकार कर दिया तो प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने की धमकी दी । प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने का प्रयत्न भी किया था । प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसके और उसके पति के बीच झगड़ा होता था । उसने तारीख 28 फरवरी, 1992 को यह बताया था कि वह दूसरे व्यक्ति से गर्भवती हुई थी । मानसिक क्रूरता साबित करने के लिए किसी और बात की आवश्यकता नहीं है । वादी ने अपने संपूर्ण जीवन में बदनामी सही है । वह शांतिपूर्वक रह नहीं सकता । पति के लिए यह पूर्णतया अवांछनीय है कि वह अपनी संवेदनाहीन पत्नी के साथ रहे । तथापि, पति और पत्नी के बीच झगड़ा इस सीमा तक पहुंच गया है कि पत्नी द्वारा आत्महत्या का प्रयत्न किया गया है । वादी के समक्ष प्रत्यर्थी की यह संस्वीकृति कि वह विवाह से पूर्व गर्भवती हो गई थी और आत्महत्या करने की बार-बार धमकी देना मानसिक क्रूरता गठित करता है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है । निचले न्यायालयों के निष्कर्ष अनुचित हैं । (पैरा 15)

अगला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्रत्यर्थी निर्वाह-व्यय के संबंध में कितनी धनराशि पाने की हकदार है । सुनवाई के दौरान अपीलार्थी-वादी द्वारा यह कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल किया गया था कि उसने प्रत्यर्थी के भरणपोषण के लिए 93,000/- रुपए की धनराशि का संदाय कर दिया है । उसने समझौता कार्यवाही के दौरान निर्वाह-व्यय के संबंध में 3,00,000/- रुपए की धनराशि देने की प्रस्थापना की थी । तथापि, समझौता विफल हो गया । उसने अप्रैल, 2017 की वेतन पर्ची फाइल की है जो महानगर (कर्मकार) अनन्ता ओ. सी. पी., महानदी कोलफील्ड लिमिटेड द्वारा जारी की गई है । इसमें यह उपदर्शित है कि वह 41,203/- रुपए वेतन पा रहा है । जब वर्ष 1993 में वाद फाइल किया गया था तो प्रत्यर्थी की आयु 23 वर्ष थी । वर्तमान में उसकी आयु 47 वर्ष है । उसकी आयु और पति की स्थिति पर विचार करते हुए न्यायालय यह महसूस करता है कि यदि 12,36,000/- रुपए की धनराशि (वेतन × 12 × 10 वर्ष

का 25 प्रतिशत) स्थायी निर्वाह-व्यय के संबंध में प्रत्यर्थी को संदत्त किया जाता है तो इससे न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा । उक्त धनरशि का संगणन इस हित को ध्यान में रखते हुए किया गया है कि यदि यह धनराशि किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा के रूप में जमा की जाती है तो इससे उचित ब्याज प्राप्त होगा । मंजूर की गई यह धनराशि अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को 3 मास के भीतर संदत्त की जाएगी और इससे विफल रहने पर प्रत्यर्थी डिक्री का निष्पादन कराकर यह धनराशि वसूल कर सकती है । (पैरा 16)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 1 : **पंकज महाजन** बनाम **डिम्पल** उर्फ **काजल** ;	7
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 511 : **समर घोष** बनाम **जया घोष** ;	7, 12
[2002]	ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582 : **प्रवीण मेहता** बनाम **इन्द्रजीत मेहता** ;	7
[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710 : **वी. भगत** बनाम **श्रीमती डी. भगत** ;	7, 11
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 121 : **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्डी** ।	10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की द्वितीय अपील सं. 338.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री गौतम मुखर्जी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री डी. के. महापात्र

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ – अपीलार्थी-वादी ने विवाह के विघटन के लिए वाद में दिए गए निर्णय की पुष्टि के विरुद्ध अपील फाइल की है ।

2. वादी का यह पक्षकथन है कि दोनों पक्षकार हिन्दू हैं । वादी और प्रत्यर्थी का विवाह तारीख 10 फरवरी, 1991 को हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी अपनी ससुराल आ गई । उसने तारीख 17 अक्तूबर, 1991 को एक पुत्र को जन्म दिया ।

प्रत्यर्थी विवाह के 5 मास के पश्चात् वादी के साथ लड़ाई झगड़ा करने लगी और अपनी ससुराल को छोड़ देने की धमकी देने लगी । उसने यह धमकी दी कि यदि वादी उस क्वार्टर को जिसमें उसके पिता रह रहे हैं, नहीं छोड़ता है तो वह आत्महत्या कर लेगी । प्रत्यर्थी का व्यवहार वादी के पिता के साथ अत्यंत अनुचित था । तारीख 28 फरवरी, 1992 को प्रत्यर्थी और उसके पिता ने वादी को गाली-गलौज किया । प्रत्यर्थी ने यह बताया कि वह विवाह से पूर्व गर्भवती हो गई थी । उसके पश्चात् वह अपने पिता के घर चली गई । प्रत्यर्थी के आचरण ने वादी को असहनीय मानसिक पीड़ा पहुंचाई । वादी का मानसिक संतुलन बिगड़ गया जिसके परिणामस्वरूप उसके साथ दुर्घटना हो गई । तारीख 17 मार्च, 1992 को प्रत्यर्थी अपनी ससुराल आई । उसने वादी के साथ अनुचित व्यवहार किया । प्रत्यर्थी की असावधानी के कारण बच्चा गिर कर बेहोश हो गया । प्रत्यर्थी वादी के साथ पुनः लड़ाई झगड़ा करने लगी और उसने आत्महत्या करने की धमकी दी । प्रत्यर्थी उसके पिता का मकान छोड़ कर चली गई । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी के पिता वादी के मकान पर आए, उन्होंने लड़ाई झगड़ा किया, वादी पर हमला किया और उसकी माता को क्षति पहुंचाई । वादी ने पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखाई थी । प्रत्यर्थी और उसके पिता ने भी दहेज की मांग का अभिकथन करते हुए वादी के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखाई । इस स्थिति में प्रत्यर्थी ने तारीख 27 अप्रैल, 1992 को बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वादी को छोड़ दिया और इस प्रकार वादी अपने दाम्पत्य संबंधों से वंचित हो गया । वादी द्वारा किए गए सभी प्रयास निरर्थक साबित हुए । यह भी अभिवाक् किया गया है कि प्रत्यर्थी ने याची के विरुद्ध विद्वान् एस. डी. जे. एम., तलचर के न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक मामला संस्थित किया । वादी के अनुसार प्रत्यर्थी लगातार और बार-बार क्रूरतापूर्वक उसे धमकियां दे रही थी जिससे कि वादी के मन में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हुई कि वह उसे नुकसान और क्षतियां पहुंचाएगी । वादी के प्रति प्रत्यर्थी का आशंका पूर्ण व्यवहार गंभीर और घातक था जिससे कि उसे मानसिक आघात पहुंचा । इस तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए ऊपर वर्णित अनुतोषों का अनुरोध करते हुए वाद संस्थित किया गया था ।

3. समन जारी किए जाने पर प्रत्यर्थी ने न्यायालय में उपस्थित होकर अपना लिखित कथन फाइल किया जिसमें उसने वादपत्र में किए गए अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी का यह विनिर्दिष्ट कथन है कि वादी

उसके चरित्र को धूमिल करने के लिए तुच्छ और बेकार के अभिकथन कर रहा था । वादी दहेज की मांग कर रहा था और उसे प्रताड़ित कर रहा था । वादी ने प्रत्यर्थी पर अनेकों बार हमला किया था और उसे उसकी ससुराल से धक्के देकर बाहर निकाल दिया था । वह वादी के साथ रहना चाहती थी । किसी तर्क और कारण के बिना उसके विवाह को विखंडित न किया जाए ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर 7 विवाद्यक विरचित किए । दोनों पक्षकारों ने अपने-अपने पक्षकथनों को साबित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने का कोई प्रयत्न नहीं किया था । वादी और प्रत्यर्थी का विवाह तारीख 10 फरवरी, 1991 को संपन्न हुआ था । अतः यह असंभाव्य नहीं था कि उसने उपर्युक्त समय अंतराल के भीतर बच्चे को जन्म दिया । यह अभिकथन साबित करने के लिए किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई थी कि प्रत्यर्थी ने वादी के साथ कठोर शब्दों का प्रयोग किया था । वादी ने प्रत्यर्थी को वापस लाने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किया । वादी क्रूरता के अपने अभिवाक् को साबित करने में विफल रहा है और इसलिए वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार नहीं है । असफल वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, अंगुल के समक्ष 1997 के टी. ए. सं. 4 1998 के 27 में आक्षेपित किया जो अन्ततः खारिज कर दी गई ।

5. द्वितीय अपील तारीख 17 फरवरी, 2000 को विधि के इन सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई थी जिनका उल्लेख अपील ज्ञापन के पैरा 13(क), (ख), (ग), (घ), (च) और (ट) में है, जो इस प्रकार हैं :–

> "13(क) – क्या निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य की जांच और परीक्षा करने में कोई अवैधता कारित की है ? क्या विद्वान् निचला न्यायालय किसी कारण का उल्लेख किए बिना विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्षों को मनमाने रूप में स्वीकार करने में न्यायोचित था, और क्या ऐसा करके न्यायालय तथ्य के अंतिम न्यायालय के रूप में अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा है ?
>
> (ख) क्या विचारण न्यायालय अभिलेख पर के तात्विक साक्ष्य के

महत्वपूर्ण भागों की उपेक्षा करने में न्यायोचित है और क्या निचला अपील न्यायालय पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने में अपने प्रयास के बिना विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को स्वीकार करने में न्यायोचित है ?

(ग) क्या प्रत्यर्थी का अपने पति से पृथक् रहने का अभिवाक् उसकी सास ससुर के साथ क्रूरता बरतने के बराबर है ?

(घ) क्या प्रत्यर्थी का आत्महत्या करने का प्रयत्न क्रूरता के बराबर है ?

(च) क्या प्रत्यर्थी की यह स्वीकारोक्ति कि उसने अपीलार्थी के साथ विवाह से पूर्व गर्भ धारण किया था, मानसिक क्रूरता के बराबर है ?

(ट) क्या निचले अपील न्यायालय ने अपील के अंतिम निपटान के समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन पर विचार न करके कोई अवैधता कारित की है ?"

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री गौतम मुखर्जी और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री डी. के. महापात्र को सुना गया ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री मुखर्जी ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी-वादी और प्रत्यर्थी का विवाह तारीख 10 फरवरी, 1991 को हुआ था । प्रत्यर्थी ने तारीख 17 अक्तूबर, 1991 को एक बच्चे को जन्म दिया था । उसने यह बताया था कि उसने विवाह से पूर्व ही गर्भ धारण कर लिया था । प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में इस तथ्य को स्वीकार किया है । उन्होंने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने के लिए बार-बार धमकियां दी थीं । प्रत्यर्थी का व्यवहार उच्छृंखल था । उसने मार्च, 1992 में अपनी ससुराल छोड़ दी थी और पृथक् रहने लगी थी । प्रत्यर्थी का उक्त कार्य मानसिक क्रूरता गठित करता है । उन्होंने अपनी इस दलील के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **वी. भगत** बनाम **श्रीमती डी. भगत**[1], **प्रवीण मेहता** बनाम **इन्द्रजीत मेहता**[2], **समर घोष** बनाम **जया घोष**[3]

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710.

[2] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582.

[3] (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

और **पंकज महाजन** बनाम **डिम्पल उर्फ काजल**[1] वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

8. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री महापात्र ने यह दलील दी कि वादी ने प्रत्यर्थी के चरित्र के संबंध में कलंकित करने वाले शब्द कहे हैं । वादपत्र में किए गए अभिकथन अस्पष्ट हैं और बिना किसी आधार के किए गए हैं । प्रत्यर्थी द्वारा आत्महत्या करने के प्रयत्न के संबंध में कोई आधारभूत तथ्य साबित नहीं किया गया है । पति-पत्नी के बीच लड़ाई झगड़े के दौरान गरमा-गर्मी होती है । यह बात अप्रायिक नहीं है कि पति-पत्नी की ओर से झगड़े के दौरान गरमा-गर्मी न हो । इससे मानसिक क्रूरता गठित नहीं हो सकती । प्रत्यर्थी अभी भी वादी के साथ रहने के लिए तैयार है । दोनों न्यायालयों ने अभिलेख पर के साक्ष्य का गहराई से विश्लेषण करने के पश्चात् वाद खारिज किया है । निचले न्यायालयों के निष्कर्षों में कोई अनुचितता या अवैधता नहीं है ।

9. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) की धारा 13 के अधीन क्रूरता विवाह विच्छेद के लिए एक सामान्य आधार है । धारा 13 जहां तक यह तात्विक है, इस प्रकार है :–

> "13. **विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो, चाहे पश्चात, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –
>
> (i) * * *
>
> (i-क) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है, या
>
> * * * ।"

10. उच्चतम न्यायालय ने **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्डी**[2] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "4. अधिनियम की धारा 13(i-क) में 'अर्जीदार के साथ क्रूरता

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 1.

[2] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 121.

का व्यवहार' पद प्रयुक्त किया गया है । 'क्रूरता' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है । तथ्यतः इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता । क्रूरता पद को मानव आचरण या मानव व्यवहार के संबंध में प्रयुक्त किया गया है । यह वैवाहिक कर्तव्यों और दायित्वों के संबंध में या आचरण से संबंधित है । यह आचरण की ऐसी प्रक्रिया है जो दूसरे पक्षकार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, साशय या आशय के बिना हो सकती है । यदि यह शारीरिक है तो न्यायालय को इसका अवधारण करने में कोई कठिनाई नहीं होगी । यह तथ्य और मात्रा का प्रश्न है । यदि यह शरीरिक है तो समस्या को समझने में कठिनाई होगी । प्रथमतः क्रूर व्यवहार की प्रकृति के बारे में जांच की जानी चाहिए । द्वितीयतः पति या पत्नी के मन में ऐसे व्यवहार का यह प्रभाव होना चाहिए कि क्या इससे यह युक्तियुक्त आशंका हो सकती है कि दूसरे पक्षकार के साथ रहना नुकसानदेह या घातक हो । अंततः आचरण की प्रकृति को विचार में लेते हुए निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए और इसका प्रभाव पति या पत्नी को दुःख पहुंचना है । तथापि, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां शिकायत किया गया आचरण अत्यधिक बुरा हो या अपने आप में अविधिपूर्ण या अवैध हो । तत्पश्चात् दूसरे पक्षकार अर्थात् पति या पत्नी पर प्रभाव या प्रतिकूल प्रभाव की जांच न की गई हो । ऐसे मामलों में जहां आचरण स्वतः साबित हो जाता है या स्वीकार किया जाता है वहां क्रूरता साबित मानी जाएगी ।

5. यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि हमारे आस-पास के जीवन में तात्विक परिवर्तन होते रहते हैं । विशेषतया वैवाहिक कर्तव्यों और दायित्वों के संबंध में अत्यधिक परिवर्तन पाए जाते हैं । ये परिवर्तन पृथक् पृथक् घरों में अलग-अलग व्यक्तियों के संबंध में पृथक् पृथक् स्तर के होते हैं । अतः जहां कोई पति या पत्नी अपने जीवन साथी या नातेदारों द्वारा क्रूरता का व्यवहार करने के संबंध में शिकायत करता है या करती है वहां न्यायालय को जीवन स्तर के बारे में जांच नहीं करना चाहिए । किसी एक मामले में क्रूरता के संबंध में अभिकथित विभिन्न तथ्य दूसरे मामले में क्रूरता नहीं हो सकते हैं । अभिकथित क्रूरता पक्षकारों के जीवन के रहन-सहन पर पूर्णतया निर्भर हो सकती है और यह उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति से संबंधित हो सकती है । यह उनकी संस्कृति और उन मानव

मूल्यों पर निर्भर हो सकती है जिनको वे महत्व देते हैं । अतः वे हमें अर्थात् न्यायाधीशों और वकीलों को अपने जीवन के अनुभवों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए । हमें स्वयं को उनके समक्ष नहीं रखना चाहिए । हमारे और पक्षकारों के बीच प्रजनन अंतराल हो सकता है । यह बेहतर होगा कि हम अपनी रूढ़ियों और रीतियों को पृथक् रखें । यह भी बेहतर होगा कि हम पूर्व उदाहरणों पर कम से कम निर्भर करें क्योंकि जैसा लार्ड डैनिंग ने शेलडन **बनाम** शेलडन, (1966) 2 आल. ई. आर. 257 वाले मामले में कहा है कि 'क्रूरता के प्रवर्ग कम नहीं हैं' । प्रत्येक मामला भिन्न हो सकता है । हम मानव आचरण पर विचार कर रहे हैं जो कि सामान्य नहीं होता । मानवता के बीच ऐसे आचरणों की किस्मों की कोई सीमा नहीं है जो क्रूरता गठित कर सकते हैं । यह बात कि किसी मामले में किसी नए प्रकार की क्रूरता बरती गई है, मानव व्यवहार, मानव क्षमता या शिकायत करने वाले व्यक्ति की सहनशक्ति की क्षमता पर निर्भर है । ऐसा क्रूरता का बेहतर और युक्तियुक्त उदाहरण है ।"

11. उच्चतम न्यायालय ने **वी. भगत** बनाम **श्रीमती डी. भगत**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"17. धारा 13(1)(i-क) में मानसिक क्रूरता को मोटे तौर पर उस आचरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूसरे पक्षकार को ऐसी मानसिक वेदना और हानि कारित करे जिससे कि एक पक्षकार का दूसरे पक्षकार के साथ रहना असंभव हो जाए । दूसरे शब्दों में, मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकार युक्तियुक्त रूप से एक साथ रहने की प्रत्याशा न कर सकें । ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि दोषी पक्षकार का आचरण ऐसा हो कि वह दूसरा पक्षकार सतत रूप से साथ न रह सके । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता इस प्रकार की है कि अर्जीदार के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा है । ऐसे किसी निष्कर्ष पर आने के लिए पक्षकारों की सामाजिक हैसियत और शैक्षणिक स्तर को ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिस समाज में वे रहते हों और पक्षकारों की साथ-साथ रहने की संभावना, यदि वे पहले ही अलग रह रहे हैं, पर ध्यान दिया जाना चाहिए और ऐसे सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जो न तो संभव हो और न ही निःशेष रूप

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710.

से वांछनीय हों । एक मामले में क्रूरता दूसरे मामले में क्रूरता के समान नहीं भी हो सकती है । यह ऐसा विषय है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अवधारित किया जाना चाहिए । यदि यह अभियोग और अभिकथनों का मामला हो तो उस संदर्भ पर भी विचार किया जाना चाहिए जिसमें कि वे किए गए हैं ।"

12. उच्चतम न्यायालय ने **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में मानव व्यवहार के कुछ ऐसे उदाहरण अभिकथित किए हैं जो मानसिक क्रूरता के मामलों पर विचार करने में सुसंगत हो सकते हैं । ये उदाहरण केवल दृष्टांत हैं न कि निःशेष । उच्चतम न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"101. यद्यपि मार्गदर्शन के लिए कोई समान मानक अधिकथित नहीं किया जा सकता तथापि, हम यह उचित समझते हैं कि मानव व्यवहार के कुछ ऐसे दृष्टांत अधिकथित करें जो 'मानसिक क्रूरता' के मामलों पर विचार करने में सुसंगत हो सकते हैं । पूर्ववर्ती पैरों में उपदर्शित दृष्टांत हैं न कि निःशेष –

(i) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने पर तीव्र मानसिक पीड़ा, व्यथा और परेशानी जो पक्षकारों को एक दूसरे के साथ रहना असंभव बना दे, मानसिक क्रूरता के मोटे आयामों के भीतर आ सकती है ।

(ii) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का पूर्णतया मूल्यांकन करने पर यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति इस प्रकार की है कि दोषी पक्षकार का आचरण इस प्रकार का है कि वह युक्तियुक्त रूप से दूसरे पक्षकार को लगातार साथ रहने के लिए नहीं कह सकता ।

(iii) * * *

(iv) मानसिक क्रूरता एक मानसिक स्थिति है । पक्षकारों में से एक के आचरण द्वारा दूसरे को पहुंचाई गई तीव्र व्यथा, निराशा और कुंठा जो लंबे समय तक हो, मानसिक क्रूरता को इंगित करती है ।

(v) लगातार दुर्व्यवहार और अपमानजनक व्यवहार उत्पीड़न,

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

कष्ट पहुंचाने वाला हो या जीवन साथी के जीवन को कठिन बनाने वाला हो ।

(vi) पति या पत्नी में से किसी के द्वारा लगातार अन्यायपूर्ण आचरण और व्यवहार जो वस्तुतः दूसरे पक्षकार के शरीर और मानसिक स्थिति को नुकसान पहुंचाता हो । शिकायत किया गया व्यवहार और उसके परिणामस्वरूप खतरा या आशंका अत्यंत गंभीर, सारवान् और प्रभावित करने वाला होना चाहिए ।

(vii) से (ix) * * *

(x) वैवाहिक जीवन पर सम्पूर्ण रूप से विचार किया जाना चाहिए और कुछ वर्षों तक मात्र कुछ उदाहरण क्रूरता गठित नहीं करते । बुरा आचरण एक लंबी अवधि तक लगातार होना चाहिए, जहां संबंध उस सीमा तक बिगड़ जाएं कि जिसके कारण पति या पत्नी में से किसी के कार्य और व्यवहार से व्यथित पक्षकार को पूर्ण रूप से यह प्रतीत हो कि दूसरे के साथ रहना कठिन है, मानसिक क्रूरता के बराबर हो सकता है ।

* * *"

13. उच्चतम न्यायालय ने **पंकज महाजन** बनाम **डिम्पल** उर्फ **काजल**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि आत्महत्या करने के लिए बार-बार धमकियां देना क्रूरता के बराबर है ।

14. उच्चतम न्यायालय ने **प्रवीण मेहता** बनाम **इन्द्रजीत मेहता**[2] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"21. धारा 13(1)(i-क) के प्रयोजन के लिए क्रूरता को पति-पत्नी में से किसी के द्वारा ऐसा व्यवहार करने के रूप में लिया जाएगा जिससे कि दूसरे के मन में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि उसका दूसरे के साथ वैवाहिक नातेदारी के रूप में साथ रहना या सतत रूप से साथ रहना सुरक्षित नहीं है । मानसिक क्रूरता मानसिक स्थिति का विषय है । मानसिक क्रूरता, मानसिक स्थिति और पति पत्नी में से किसी की भावना का विषय है जो एक दूसरे के साथ व्यवहार से संबंधित है । शारीरिक क्रूरता के मामले के असदृश प्रत्येक

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 1.

[2] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582.

मानसिक क्रूरता को साक्ष्य द्वारा साबित करना कठिन है । यह आवश्यक रूप से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संबंधित निष्कर्ष निकालने का विषय है । पति-पत्नी में से किसी के आचरण द्वारा दूसरे के साथ वेदना, व्यथा और कुंठा कारित करने के मामले को तथ्यों और परिस्थितियों के मूल्यांकन द्वारा पता लगाया जा सकता है जिनमें वैवाहिक जीवन के दोनों सहभागी साथ रह रहे हैं । इस बारे में निष्कर्ष संचयी रूप से संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों से निकाला जाना चाहिए । मानसिक क्रूरता के मामले में यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि व्यवहार के किसी एक दृष्टांत को विचार में लिया जाए और तत्पश्चात् यह प्रश्न उठाया जाए कि क्या ऐसा व्यवहार अपने आप में मानसिक क्रूरता कारित करने के लिए पर्याप्त है । इस बारे में निष्कर्ष ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के संचयी प्रभाव के आधार पर निकाला जाना चाहिए और ऐसे तथ्य और परिस्थितियां अभिलेख पर के साक्ष्य से निकलती हों और तत्पश्चात् इस बारे में निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि क्या विवाह-विच्छेद अर्जी में के अर्जीदार के साथ दूसरे पक्षकार के आचरण के कारण मानसिक क्रूरता कारित हुई है ।"

15. वादपत्र के सरसरी परिशीलन मात्र से स्पष्ट होता है कि वादी ने यह अभिवाक् किया है कि प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने के लिए धमकी दी थी और प्रत्यर्थी ने यह भी बताया था कि वह विवाह के पूर्व गर्भवती हो गई थी । वादी ने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि विवाह के 5 मास के पश्चात् प्रत्यर्थी पृथक् रहने के लिए दबाव देने लगी । जब उसने इनकार कर दिया तो प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने की धमकी दी । प्रत्यर्थी ने आत्महत्या करने का प्रयत्न भी किया था । प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसके और उसके पति के बीच झगड़ा होता था । उसने तारीख 28 फरवरी, 1992 को यह बताया था कि वह दूसरे व्यक्ति से गर्भवती हुई थी । मानसिक क्रूरता साबित करने के लिए किसी और बात की आवश्यकता नहीं है । वादी ने अपने संपूर्ण जीवन में बदनामी सही है । वह शांतिपूर्वक रह नहीं सकता । पति के लिए यह पूर्णतया अवांछनीय है कि वह अपनी संवेदनाहीन पत्नी के साथ रहे । इस बारे में संस्कृत का एक श्लोक भी है "अजा युद्धा रिषी शृद्धा, प्रभाते मेधदम्बरू, दाम्पत्य कालहिसाचिबा, बहवादम्बरे लघु क्रिया ।" (अर्थात् बकरियों की लड़ाई, रिषियों की शृद्धा, पति-पत्नी के मध्य झगड़ा और प्रातः काल के बादल जोर हार शोर के साथ आरंभ होते हैं, किंतु फुसफुसाहट के साथ समाप्त हो

जाते हैं) तथापि, पति और पत्नी के बीच झगड़ा इस सीमा तक पहुंच गया है कि पत्नी द्वारा आत्महत्या का प्रयत्न किया गया है । वादी के समक्ष प्रत्यर्थी की यह संस्वीकृति कि वह विवाह से पूर्व गर्भवती हो गई थी और आत्महत्या करने की बार-बार धमकी देना मानसिक क्रूरता गठित करता है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है । निचले न्यायालयों के निष्कर्ष अनुचित हैं ।

16. अगला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्रत्यर्थी निर्वाह-व्यय के संबंध में कितनी धनराशि पाने की हकदार है । सुनवाई के दौरान अपीलार्थी-वादी द्वारा यह कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल किया गया था कि उसने प्रत्यर्थी के भरणपोषण के लिए 93,000/- रुपए की धनराशि का संदाय कर दिया है । उसने समझौता कार्यवाही के दौरान निर्वाह-व्यय के संबंध में 3,00,000/- रुपए की धनराशि देने की प्रस्थापना की थी । तथापि समझौता विफल हो गया । उसने अप्रैल, 2017 की वेतन पर्ची फाइल की है जो महानगर (कर्मकार) अनन्ता ओ. सी. पी., महानदी कोलफील्ड लिमिटेड द्वारा जारी की गई है । इसमें यह उपदर्शित है कि वह 41,203/- रुपए वेतन पा रहा है । जब वर्ष 1993 में वाद फाइल किया गया था तो प्रत्यर्थी की आयु 23 वर्ष थी । वर्तमान में उसकी आयु 47 वर्ष है । उसकी आयु और पति की स्थिति पर विचार करते हुए न्यायालय यह महसूस करता है कि यदि 12,36,000/- रुपए की धनराशि (वेतन × 12 × 10 वर्ष का 25 प्रतिशत) स्थायी निर्वाह-व्यय के संबंध में प्रत्यर्थी को संदत्त किया जाता है तो इससे न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा । उक्त धनरशि का संगणन इस हित को ध्यान में रखते हुए किया गया है कि यदि यह धनराशि किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा के रूप में जमा की जाती है तो इससे उचित ब्याज प्राप्त होगा । मंजूर की गई यह धनराशि अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को 3 मास के भीतर संदत्त की जाएगी और इससे विफल रहने पर प्रत्यर्थी डिक्री का निष्पादन कराकर यह धनराशि वसूल कर सकती है ।

17. परिणामतः निचले न्यायालयों के निर्णय और डिक्रियां अपास्त की जाती हैं । वादी का वाद डिक्री किया जाता है । अपील ऊपर उपदर्शित सीमा तक मंजूर की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

अनुसूइया सीताराम बादीगर और अन्य

बनाम

नसीर उद्दीन अमीन उद्दीन अमीन नायक

तारीख 22 जून, 2016

न्यायमूर्ति ए. एन. वेणुगोपाल गौड़ा

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 5 – अपील फाइल करने में 25 दिन का विलंब – विलंब माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन – न्यायालय द्वारा प्रथमतः अपील मंजूर करके बाद में पृथक् आदेश-पत्रक पर विलंब माफी का आदेश पारित किया जाना – विलंब माफ करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया पूर्णतया अनुचित है क्योंकि प्रथमतः विलंब माफ करने के पश्चात् ही अपील गुण-दोष पर सुनी जानी चाहिए ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 – मूल डिक्री के विरुद्ध अपील – विचारण न्यायालय द्वारा वाद की खारिजी और विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील – पक्षकारों को बहस का अवसर दिए बिना अपील की मंजूरी – अपील न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अनुज्ञेय नहीं है – अपील न्यायालय द्वारा पक्षकारों को गुण-दोष पर सुनने के पश्चात् ही अपना निर्णय देना चाहिए ।

यह अपील ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, सौनदत्ती द्वारा 2015 की नियमित अपील सं. 26 में तारीख 18 मार्च, 2016 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । निचले अपील न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा अपील मंजूर करते हुए सिविल न्यायाधीश, सौनदत्ती द्वारा 2000 के मूल वाद सं. 213 में तारीख 5 अगस्त, 2015 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया 2010 का मूल वाद सं. 213 विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2015 को खारिज किया गया था । 2015 की नियमित अपील सं. 26 तारीख 5 अक्तूबर, 2015 को फाइल की गई थी । अपील फाइल करने में 25 दिन के विलंब को माफ करने के लिए 2015 का अंतरिम आवेदन सं. 1 फाइल किया गया

था । 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 1 का विरोध किया गया था और इस संबंध में तारीख 18 फरवरी, 2016 को बहस सुनी गई थी । उद्धृत निर्णयों को दाखिल करने के लिए अपील स्थगित की गई थी । तारीख 20 फरवरी, 2016 को उद्धृत निर्णयों के साथ ज्ञापन फाइल किया गया था और मामला आदेशों के लिए नियत किया गया था । तारीख 18 मार्च, 2016 के निर्णय द्वारा अपील मंजूर की गई थी और विचारण न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त की गई थी । इसके परिणामस्वरूप पृथक् आदेश द्वारा अपील फाइल करने में 25 दिन के विलंब को कोई कारण दिए बिना या कारण दर्शाने के लिए समाधान अभिलिखित किए बिना विलंब माफ किया गया था और 2010 का मूल वाद सं. 213 डिक्री किया गया था । मामले के अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 1 पर बहस सुनी गई थी और आवेदन पर विचार किए बिना और उस पर आदेश पारित किए बिना मुख्य अपील मंजूर की गई थी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिसे अपील में आक्षेपित किया गया था, अपास्त की गई थी । परिणामतः आदेश पत्रक पर किए गए पृथक् आदेश द्वारा अपील फाइल करने में विलंब माफ किया गया था । निचले अपील न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया आश्चर्यजनक है । जब तक विलंब माफ न किया जाए अपील न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर अपील का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है । यह एक "गाड़ी के पीछे घोड़ा" जैसा मामला है । प्रथमतः, अपील मंजूर की गई थी और इसके परिणामस्वरूप विलंब माफ किया गया था । (पैरा 6 और 7)

स्वीकृततः निचले न्यायालय ने मुख्य अपील में बहस करने के लिए किसी भी पक्षकार को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया । तथापि, न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी के हक में अपील मंजूर कर ली और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया । चूंकि निचले अपील न्यायालय ने किसी भी पक्षकार को सुने बिना विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया, इसलिए आक्षेपित निर्णय और डिक्री अवैध होने के कारण कायम नहीं रखी जा सकती । अपील में के प्रत्यर्थियों को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । चूंकि ऐसा नहीं किया गया है इसलिए मामले में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है । परिणामतः अपील मंजूर की जाती है और आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । 2015 की नियमित

अपील सं. 26 विधि के अनुसार नए सिरे से निपटान के लिए पुनः स्थापित की जाती है । (पैरा 8 और 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की नियमित द्वितीय अपील सं. 100482.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एस. जी. कडाडाकट्टी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ए. डी. शैलेन्द्र

न्यायमूर्ति ए. एन. वेणुगोपाल गौड़ा – यह अपील ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, सौनदत्ती द्वारा 2015 की नियमित अपील सं. 26 में तारीख 18 मार्च, 2016 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । निचले अपील न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा अपील मंजूर करते हुए सिविल न्यायाधीश, सौनदत्ती द्वारा 2000 के मूल वाद सं. 213 में तारीख 5 अगस्त, 2015 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया है ।

2. अपीलार्थी-प्रतिवादियों ने यह अपील फाइल की है । प्रत्यर्थी-वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद अनुसूची में उपदर्शित संपत्ति के संबंध में स्थायी व्यादेश की डिक्री पारित करने के लिए वाद फाइल किया था । लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया गया था । चार विवाद्यक विरचित किए गए थे । विचारण के पश्चात् और बहस सुनने के पश्चात् वाद खर्चों के साथ खारिज किया गया था ।

3. वादी ने उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर तारीख 5 अक्तूबर, 2015 को नियमित 2015 की अपील सं. 26 फाइल की । अपील फाइल करने में 25 दिन का विलंब हुआ था । विलंब माफी का अनुरोध करते हुए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन अंतिरम आवेदन सं. 1/2015 फाइल किया गया था । अंतरिम आवेदन सं. 1/2015 में बहस सुनी गई थी और आदेशों के लिए तारीख नियत की गई थी । तारीख 18 मार्च, 2016 को निर्णय और आदेश पारित किया गया था ।

4. विचारार्थ सारभूत प्रश्न यह है कि क्या निचले अपील न्यायालय ने अपील में गुण-दोष पर बहस सुने बिना अपील मंजूर करने और वाद डिक्री करने में अवैधता कारित की है ?

5. दोनों पक्षों के विद्वान् अधिवक्ताओं को सुना गया और

अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

6. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया 2010 का मूल वाद सं. 213 विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2015 को खारिज किया गया था । 2015 की नियमित अपील सं. 26 तारीख 5 अक्तूबर, 2015 को फाइल की गई थी । अपील फाइल करने में 25 दिन के विलंब को माफ करने के लिए 2015 का अंतरिम आवेदन सं. 1 फाइल किया गया था । 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 1 का विरोध किया गया था और इस संबंध में तारीख 18 फरवरी, 2016 को बहस सुनी गई थी । उद्धृत निर्णयों को दाखिल करने के लिए अपील स्थगित की गई थी । तारीख 20 फरवरी, 2016 को उद्धृत निर्णयों के साथ ज्ञापन फाइल किया गया था और मामला आदेशों के लिए नियत किया गया था । तारीख 18 मार्च, 2016 के निर्णय द्वारा अपील मंजूर की गई थी और विचारण न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त की गई थी । इसके परिणामस्वरूप पृथक् आदेश द्वारा अपील फाइल करने में 25 दिन के विलंब को कोई कारण दिए बिना या कारण दर्शाने के लिए समाधान अभिलिखित किए बिना विलंब माफ किया गया था और 2010 का मूल वाद सं. 213 डिक्री किया गया था ।

7. मामले के अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 1 पर बहस सुनी गई थी और आवेदन पर विचार किए बिना और उस पर आदेश पारित किए बिना मुख्य अपील मंजूर की गई थी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिसे अपील में आक्षेपित किया गया था, अपास्त की गई थी । परिणामतः आदेश-पत्रक पर किए गए पृथक् आदेश द्वारा अपील फाइल करने में विलंब माफ किया गया था । निचले अपील न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया आश्चर्यजनक है । जब तक विलंब माफ न किया जाए अपील न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर अपील का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है । यह एक "गाड़ी के पीछे घोड़ा" जैसा मामला है । प्रथमतः, अपील मंजूर की गई थी और इसके परिणामस्वरूप विलंब माफ किया गया था ।

8. स्वीकृततः निचले न्यायालय ने मुख्य अपील में बहस करने के लिए किसी भी पक्षकार को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया । तथापि, न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी के हक में अपील मंजूर कर ली और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया । चूंकि निचले अपील न्यायालय ने किसी भी पक्षकार को सुने बिना विचारण न्यायालय

द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया, इसलिए आक्षेपित निर्णय और डिक्री अवैध होने के कारण कायम नहीं रखी जा सकती । अपील में के प्रत्यर्थियों को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । चूंकि ऐसा नहीं किया गया है इसलिए मामले में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है ।

9. परिणामतः अपील मंजूर की जाती है और आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । नियमित अपील सं. 26/2015 विधि के अनुसार नए सिरे से निपटान के लिए पुनः स्थापित की जाती है ।

10. दोनों पक्षकारों द्वारा सभी दलीलें देने के लिए विकल्प खुले रहेंगे ।

11. दोनों पक्षकारों को यह निदेश दिया जाता है कि वे तारीख 16 जुलाई, 2016 को निचले अपील न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर आगे के आदेश प्राप्त करें । मामला 28 अक्तूबर, 2016 को या उसके पूर्व विनिश्चित किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

नागाराजू एस. एम. और अन्य

बनाम

एडवोकेट एसोसिएट्स (रजि.) कोर्ट कम्पलेक्स, चन्नापटना टाउन और अन्य

तारीख 20 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति अशोक बी. हिन्चीगेरी

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) – धारा 26(1) और 28 सपठित बार कौंसिल आफ इंडिया रूल्स का अध्याय 7 – अधिवक्ता संगम का निर्वाचन – मतदाता सूची का पुनरीक्षण – निर्वाचन – अधिकारी की शक्तियां – संगम की उप-विधियां संगम के महासचिव को मतदाता सूची के संबंध में आक्षेप आहूत करने और सूची को पुनरीक्षण करने की शक्तियां प्रदत्त करती है न कि निर्वाचन अधिकारी को – कर्नाटक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और इसके अधीन विरचित उप-विधियां भी निर्वाचन अधिकारी को मतदाता-सूची को पुनरीक्षित करने या किसी सदस्य का नाम निरसित करने की शक्तियां प्रदत्त नहीं करतीं ।

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 – धारा 26(1) सपठित बार कौंसिल आफ इंडिया रूल्स का अध्याय 7 – अधिवक्ता संगम का निर्वाचन – निर्वाचन अधिकारी द्वारा बार सदस्यों से कतिपय बिन्दुओं पर शपथपत्र और विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र मांगा जाना – विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र जारी न किए जाने के कारण शर्त का अनुपालन संभव न होना – विकल्प के रूप में उत्तीर्ण प्रमाणपत्र की मांग – ऐसा निदेश किया जाना उचित है ।

याचियों ने यह शिकायत की है कि अधिवक्ता संगम, चन्नापटना की कार्यपालक समिति का निर्वाचन तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा तैयार की गई सदस्य/मतदाताओं की सूची के आधार पर किया जा रहा है न कि उक्त संगम की कार्यपालक समिति द्वारा अपनी उप-विधियों के अनुसरण में तैयार की गई सदस्य/मतदाताओं की सूची के आधार पर । याचिकाओं में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने विद्वान् काउंसेल की दलीलों पर गहनतापूर्वक विचार किया । न्यायालय के विचार के लिए प्रथम प्रश्न यह है

कि क्या तृतीय प्रत्यर्थी निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन सूची को पुनरीक्षित करने के लिए सक्षम है । इस बारे में न्यायालय का स्पष्ट उत्तर नकारात्मक है । कर्नाटक सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1960 या उसके अधीन विरचित नियमों या प्रथम प्रत्यर्थी संगम की उप-विधियों (उपाबंध-बी) में इस बारे में कोई उपबंध नहीं है । उप-विधि सं. 36 संगम के महासचिव को सूची के संबंध में आपत्तियां आहूत करने और मतदाताओं के नामों को पुनरीक्षित करने के लिए सूचना जारी करने के लिए शक्ति प्रदत्त करती है । उप-विधियों के अधीन निर्वाचन अधिकारी का कर्तव्य घटनाओं के कलेण्डर को तैयार करना और उसे प्रकाशित करना तथा निर्वाचन कराने का है । निर्वाचन अधिकारी के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि वह सदस्यों की सूची विस्तारित करे या उसमें कटौती करे । यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि राज्य बार कौंसिल ने अपना यह सुविचारित मत व्यक्त किया है कि निर्वाचन अधिकारी को सदस्यों की सूची से किसी सदस्य का नाम निरसित करने की शक्ति नहीं है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि निर्वाचन अधिकारी द्वारा तैयार की गई सूची उप-विधियों के प्रतिकूल है । निर्वाचन अधिकारी प्रथम प्रत्यर्थी संगम की सामान्य निकाय की बैठक में पारित तारीख 7 अप्रैल, 2017 के संकल्प (उपाबंध एल) के निर्देश में कोई दलील देकर सदस्यों/मतदाताओं की सूची से कतिपय नाम हटाने को दो कारणों से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता – (i) सामान्य निकाय का संकल्प उप-विधियों के उपबंधों पर अभिभावी नहीं हो सकता । यदि सामान्य निकाय के संकल्पों और उप-विधियों के बीच प्रतिरोध है तो उप-विधियां संकल्पों पर अध्यारोही होंगी । (ii) न्यायालय द्वारा संकल्पों के सुसंगत भागों, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है, के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि निर्वाचन अधिकारियों को सदस्यों/मतदाताओं की सूची से किसी व्यक्ति का नाम हटाने की शक्ति प्राप्त नहीं है । एक अन्य अनौचितता भी है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती और वह यह है कि निर्वाचन अधिकारियों ने 118 सदस्यों में से केवल 45 सदस्यों को सूचनाएं जारी की हैं । यह उचित होता कि सभी 118 सदस्यों को सूचनाएं जारी की जातीं । यदि निर्वाचन अधिकारी दस्तावेजों की मांग करते तो भी समरूपता के आधार पर पेश किए जाते । ऐसा नहीं हो सकता कि संगम के कुछ सदस्यों का चयन किया जाए । निर्वाचन अधिकारियों को प्रथम प्रत्यर्थी संगम के सदस्यों की हैसियत के बारे में निर्वाचन कराने में अपनी वैयक्तिक जानकारी को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए था । न्यायालय के इन सभी निष्कर्षों और

संप्रेक्षणों के बारे में यह नहीं समझा जाना चाहिए कि यह किसी निर्वाचन अधिकारी ने विरुद्ध कठोर टिप्पण किए गए हैं । यह पूर्णतया संभव है कि निर्वाचन अधिकारियों ने कुछ चीजें बेहतर आशय के साथ की हों । तथापि, इस प्रकृति के मामलों में आशय कार्रवाईयों को न्यायोचित नहीं ठहरा सकता । यहां तक कि निर्वाचन अधिकारी प्रणाली को ठीक करने के लिए अति उत्साही भी हों तो भी उन्हें विधि द्वारा विहित रीति में ही अपने कर्तव्यों को पूरा करना चाहिए । (पैरा 12, 13, 14, 15 और 16)

अब न्यायालय इस प्रश्न की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होता है कि क्या निर्वाचन अधिकारी सदस्यों से इस आशय का शपथ-पत्र फाइल करने के लिए जोर दे सकते हैं कि वे कहीं भी नियोजित नहीं हैं या वे किसी अन्य अधिवक्ता संगम के सदस्य नहीं बने हैं । निर्वाचन अधिकारियों के तारीख 7 अप्रैल, 2017 के संकल्प के अनुसार उन्होंने इस बात की पुष्टि करने के लिए प्रत्येक सदस्य से शपथपत्र देने की अपेक्षा की कि वे किसी अन्य संगठन में नियोजित नहीं हैं और वे सतत रूप से विधिक व्यवसाय कर रहे हैं और उन्होंने किसी अन्य अधिवक्ता संगम में मत देने का अधिकार अर्जित नहीं किया है । यदि 118 अधिवक्ताओं में से कोई अधिवक्ता जिसका नाम सूची (उपाबंध-एम) में नामांकित है, उक्त शपथपत्र प्रस्तुत करने में विफल रहता है तो वह आने वाले निर्वाचन में मतदान करने का हकदार नहीं होगा । संबद्ध प्रश्न जिस पर विचार नहीं किया गया, यह है कि क्या निर्वाचन अधिकारी उन अधिवक्ताओं से विधि व्यवसाय करने का प्रमाणपत्र पेश करने के लिए कह सकते हैं, जिन्होंने वर्ष 2010 के पश्चात् राज्य बार कौंसिल में स्वयं को नामांकित कराया है । इस प्रश्न की प्रतिपरीक्षा करने के लिए न्यायालय यह उचित समझता है कि राज्य बार कौंसिल के कृत्यकारियों को इस बारे में सुना जाए कि क्या व्यवसाय करने का प्रमाणपत्र जारी किया गया है और यदि नहीं तो ऐसे प्रमाणपत्र क्यों जारी नहीं किए गए हैं । अतः विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र पेश करने के लिए तारीख 7 अप्रैल, 2017 को सामान्य निकाय की सभा द्वारा अधिरोपित शर्त अनुपालन किए जाने योग्य नहीं है । परिणामतः विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र को पेश करने के लिए बल नहीं दिया जा सकता क्योंकि ऐसा करना संभव नहीं है । अतः निर्वाचन अधिकारियों को विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र पेश करने के लिए बल न देने के लिए निदेश दिया गया । इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल श्री महेश आर. उप्पिन ने यह दलील दी कि ऐसे अधिवक्ता जिन्होंने 2010 के पश्चात् बार कौंसिल में स्वयं को

नामांकित कराया है, अखिल भारतीय अधिवक्ता परीक्षा में उत्तीर्ण अधिवक्ताओं से प्रमाणपत्र पेश करने के लिए कहा जाए । उनका यह अनुरोध स्वीकार किए जाने योग्य है । ऐसे अधिवक्ताओं से जिनके नाम (उपाबंध-एम) सूची में नामांकित हैं और जो 2010 के पश्चात् राज्य बार कौंसिल में रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं, यह अपेक्षित है और उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे उक्त उत्तीर्ण प्रमाणपत्र पेश करें । निर्वाचन अधिकारियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे उक्त सभी 118 सदस्यों को मोबाइल से एस. एम. एस. द्वारा और सभी संभव संसूचनाओं द्वारा उक्त निदेश जारी करें । (पैरा 19, 20, 22, 23, 24 और 25)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका सं. 30428-30444.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिकाएं ।

याचियों की ओर से श्री के. एन. पुत्तेगौड़ा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस. एस. हावेरी, डी. एल. जगदीश, बी. आर. रवीन्द्र,, महेश आर. उप्पिन, जी. नटराज और किरन कुमार (अपर सरकारी अधिवक्ता)

न्यायमूर्ति अशोक बी. हिन्चीगेरी – याचियों ने यह शिकायत की है कि अधिवक्ता संगम, चन्नापटना की कार्यपालक समिति का निर्वाचन तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा तैयार की गई सदस्य/मतदाताओं की सूची के आधार पर किया जा रहा है न कि उक्त संगम की कार्यपालक समिति द्वारा अपनी उप-विधियों के अनुसरण में तैयार की गई सदस्य/मतदाताओं की सूची के आधार पर ।

2. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री के. एन. पुत्तेगौड़ा ने यह दलील दी कि तथ्यतः याची सं. 1 उक्त संगम का संस्थापक है । याची सं. 1 एक-एक बार उक्त संगम का अध्यक्ष और महासचिव रहा है । उन्होंने यह दलील दी कि सभी 17 याची अधिवक्ता हैं जो चन्नापटना में विधि व्यवसाय करते हैं । उन्होंने यह दलील दी कि वर्ष 2015-16 के लिए उक्त संगम के सदस्यों की सूची (उपाबंध-जी) है । उक्त सूची के आधार पर सभी याचियों ने 2015-17 की अवधि के लिए कार्यपालक समिति के निर्वाचन की प्रक्रिया में भाग लिया है ।

3. उन्होंने यह दलील दी कि उक्त संगम के सदस्यों के विभिन्न

प्रवर्गों की समेकित सूची संगम की कार्यपालक समिति ने भविष्य में होने वाले निर्वाचनों के लिए बनाई है । उन्होंने इस संबंध में सूची की प्रति (उपाबंध-एम) मेरे समक्ष पेश की है जिसमें 118 सदस्यों के नाम अन्तर्विष्ट हैं ।

4. इस स्थिति में तृतीय प्रत्यर्थी (निर्वाचन अधिकारी) ने कतिपय सदस्यों को यह कहते हुए सूचनाएं जारी की हैं कि यदि वे कतिपय दस्तावेज पेश नहीं करते तो उनकी सदस्यता रद्द कर दी जाएगी । याचियों ने तथा ऐसी सूचना पाने वाले अन्य सूचना प्राप्तकर्ताओं ने अपने-अपने विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किए । उन्होंने यह दलील दी कि कर्नाटक राज्य बार क़ौंसिल के अभिलेखों के अनुसार सभी याची विधि व्यवसायियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हैं । प्रत्यर्थी सं. 3 ने किसी प्राधिकार के बिना और किसी कारण के बिना 94 सदस्यों की एक अधोगामी सूची तैयार करके सदस्यों की सूची से 24 नाम निरस्त कर दिए हैं । उन्होंने यह दलील दी कि उक्त संगम की उप-विधि सं. 36 संगम के महासचिव को आक्षेप आमंत्रित करते हुए मतदाताओं की तैयार करने, सूची को प्रकाशित करने और तत्पश्चात् अंतिम सूची तैयार करने की शक्ति प्रदत्त करती है । उप-विधियों के अधीन तृतीय प्रत्यर्थी निर्वाचन अधिकारी सदस्यों या मतदाताओं की सूची को पुनरीक्षित करने के लिए सक्षम नहीं हैं ।

5. उन्होंने यह दलील दी कि इस विवाद्यक पर राज्य बार कौंसिल द्वारा विचार किया गया था । राज्य बार कौंसिल ने सभी सुसंगत सामग्री पर विचार करने के पश्चात् अपने तारीख 30 जून, 2017 के पत्र द्वारा यह सुविचारित मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा तैयार की गई निर्वाचन सूची उप-विधियों के प्रतिकूल है । तृतीय प्रत्यर्थी से यह कहा गया था कि वह समुचित निर्वाचन सूची तैयार किए जाने तक निर्वाचन प्रक्रिया को स्थगित रखे ।

6. प्रत्यर्थी सं. 2 के विद्वान् काउंसेल श्री बी. आर. रवीन्द्र की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री डी. एल. जगदीश ने यह दलील दी कि तृतीय प्रत्यर्थी उस निर्वाचन प्रक्रिया को पूरा कर रहा है जो संगम की कार्यपालक समिति द्वारा तैयार की गई सदस्यों/मतदाताओं की सूची पर आधारित है ।

7. प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित श्री विद्वान् काउंसेल श्री जी. नटराज ने यह दलील दी कि राज्य बार कौंसिल का कथन उसके तारीख 30 जून, 2017 के पत्र में अन्तर्विष्ट है । उन्होंने मुझे यह बताया कि राज्य बार कौंसिल ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि निर्वाचन अधिकारियों को

संगम की कार्यपालक समिति द्वारा तैयार की गई सूची से किसी व्यक्ति का नाम हटाने के लिए कोई शक्ति प्राप्त नहीं है ।

8. प्रत्यर्थी सं. 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता श्री टी. एल. किरन कुमार ने यह दलील दी कि निर्वाचन, संगम की उप-विधियों और कर्नाटक सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1960 तथा इसके अधीन बनाए नियमों के अनुसार कराए जाएंगे ।

9. प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री महेश आर. उप्पिन ने यह दलील दी कि प्रथम प्रत्यर्थी अर्थात् संगम के महासचिव उप-विधियों के खंड 36 के अनुसार सदस्यों की सूची को पुनरीक्षित करने में विफल रहे हैं । उन्होंने यह दलील दी कि निर्वाचन आयुक्तों ने अपनी तारीख 7 अप्रैल, 2017 को आयोजित सभा में सामान्य निकाय द्वारा पारित संकल्प के अनुसरण में कतिपय सूचनाएं/दस्तावेज मांगे हैं । श्री महेश आर. उप्पिन ने सामान्य निकाय की सभा में रखे गए संकल्प के भागों का उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार हैं :–

(स्थानीय भाषा का लोप किया गया)

10. उन्होंने यह दलील दी कि प्रथम प्रत्यर्थी संगम के कतिपय सदस्यों ने विधि व्यवसाय छोड़ दिया है और अन्य व्यवसाय अपना लिया है और कतिपय सदस्य अन्य अधिवक्ता संगमों के सदस्य बन गए हैं ।

11. उन्होंने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने 45 व्यक्तियों को सूचनाएं जारी की थीं । कुछ ने उत्तर प्रस्तुत नहीं किया और कुछ ने अस्पष्ट और अपकर्षी उत्तर प्रस्तुत किए । एक याची ने अंशदान फीस भी संदत्त नहीं की । उन्होंने यह दलील दी कि प्रथम प्रत्यर्थी संगम के कुछ सदस्यों ने सरकारी सेवा ग्रहण कर ली है ।

12. मैंने विद्वान् काउंसेल की दलीलों पर गहनतापूर्वक विचार किया । मेरे विचार के लिए प्रथम प्रश्न यह है कि क्या तृतीय प्रत्यर्थी निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन सूची को पुनरीक्षित करने के लिए सक्षम है । इस बारे में मेरा स्पष्ट उत्तर नकारात्मक है । कर्नाटक सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1960 या उसके अधीन विरचित नियमों या प्रथम प्रत्यर्थी संगम की उप-विधियों (उपाबंध-बी) में इस बारे में कोई उपबंध नहीं है । उप-विधि सं. 36 संगम के महासचिव को सूची के संबंध में आपत्तियां आहूत करने और मतदाताओं के नामों को पुनरीक्षित करने के लिए सूचना जारी करने के लिए शक्ति प्रदत्त करती है । उप-विधियों के अधीन निर्वाचन अधिकारी

का कर्तव्य घटनाओं के कलेण्डर को तैयार करना और उसे प्रकाशित करना तथा निर्वाचन कराने का है । निर्वाचन अधिकारी के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि वह सदस्यों की सूची विस्तारित करे या उसमें कटौती करे ।

13. यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि राज्य बार कौंसिल ने अपना यह सुविचारित मत व्यक्त किया है कि निर्वाचन अधिकारी को सदस्यों की सूची से किसी सदस्य का नाम निरसित करने की शक्ति नहीं है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि निर्वाचन अधिकारी द्वारा तैयार की गई सूची उप-विधियों के प्रतिकूल है ।

14. निर्वाचन अधिकारी प्रथम प्रत्यर्थी संगम की सामान्य निकाय की बैठक में पारित तारीख 7 अप्रैल, 2017 के संकल्प (उपाबंध एल) के निर्देश में कोई दलील देकर सदस्यों/मतदाताओं की सूची से कतिपय नाम हटाने को दो कारणों से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता – (i) सामान्य निकाय का संकल्प उप-विधियों के उपबंधों पर अभिभावी नहीं हो सकता । यदि सामान्य निकाय के संकल्पों और उप-विधियों के बीच प्रतिरोध है तो उप-विधियां संकल्पों पर अध्यारोही होंगी । (ii) मेरे द्वारा संकल्पों के सुसंगत भागों, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है, के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि निर्वाचन अधिकारियों को सदस्यों/मतदाताओं की सूची से किसी व्यक्ति का नाम हटाने की शक्ति प्राप्त नहीं है ।

15. एक अन्य अनौचितता भी है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती और वह यह है कि निर्वाचन अधिकारियों ने 118 सदस्यों में से केवल 45 सदस्यों को सूचनाएं जारी की हैं । यह उचित होता कि सभी 118 सदस्यों को सूचनाएं जारी की जातीं । यदि निर्वाचन अधिकारी दस्तावेजों की मांग करते तो भी समरूपता के आधार पर पेश किए जाते । ऐसा नहीं हो सकता कि संगम के कुछ सदस्यों का चयन किया जाए । निर्वाचन अधिकारियों को प्रथम प्रत्यर्थी संगम के सदस्यों की हैसियत के बारे में निर्वाचन कराने में अपनी वैयक्तिक जानकारी को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए था ।

16. न्यायालय के इन सभी निष्कर्षों और संप्रेक्षणों के बारे में यह नहीं समझा जाना चाहिए कि यह किसी निर्वाचन अधिकारी ने विरुद्ध कठोर टिप्पण किए गए हैं । यह पूर्णतया संभव है कि निर्वाचन अधिकारियों ने कुछ चीजें बेहतर आशय के साथ की हों । तथापि, इस प्रकृति के मामलों

में आशय कार्रवाईयों को न्यायोचित नहीं ठहरा सकता । यहां तक कि निर्वाचन अधिकारी प्रणाली को ठीक करने के लिए अति उत्साही भी हों तो भी उन्हें विधि द्वारा विहित रीति में ही अपने कर्तव्यों को पूरा करना चाहिए ।

17. मैं यह भी उल्लेख करना चाहता हूं कि सूचना पाने वाले सदस्यों ने ऐसा उत्तर दिया है जिसकी भाषा आपत्तिजनक और निन्दनात्मक है । उन्हें धैर्य से कार्य करना चाहिए और ऐसा कोई कथन करने से बचना चाहिए जो विधि व्यवसाय की गरिमा रखने वाला न हो ।

18. दोहराते हुए यह स्पष्ट किया जाता है कि निर्वाचन अधिकारी सदस्य/मतदाता सूची को पुनरीक्षित करने के लिए सक्षम नहीं हैं या उन्हें शक्ति प्राप्त नहीं है । प्रथम प्रत्यर्थी संगम की कार्यपालक समिति का निर्वचन कराने के लिए निर्वाचन अधिकारी सदस्यों की उस अंतिम सूची को लेंगे जिसमें 118 सदस्य सम्मिलित हैं और जो कार्यपालक समिति द्वारा तैयार की गई है । निर्वाचन अधिकारी स्वयं द्वारा तैयार की गई 94 सदस्यों की सूची (उपाबंध-टी) के आधार पर कार्रवाई नहीं करेंगे ।

19. अब मैं इस प्रश्न की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होता हूं कि क्या निर्वाचन अधिकारी सदस्यों से इस आशय का शपथपत्र फाइल करने के लिए जोर दे सकते हैं कि वे कहीं भी नियोजित नहीं हैं या वे किसी अन्य अधिवक्ता संगम के सदस्य नहीं बने हैं । निर्वाचन अधिकारियों के तारीख 7 अप्रैल, 2017 के संकल्प के अनुसार उन्होंने इस बात की पुष्टि करने के लिए प्रत्येक सदस्य से शपथ-पत्र देने की अपेक्षा की कि वे किसी अन्य संगठन में नियोजित नहीं हैं और वे सतत रूप से विधिक व्यवसाय कर रहे हैं और उन्होंने किसी अन्य अधिवक्ता संगम में मत देने का अधिकार अर्जित नहीं किया है । यदि 118 अधिवक्ताओं में से कोई अधिवक्ता जिसका नाम सूची (उपाबंध-एम) में नामांकित है, उक्त शपथपत्र प्रस्तुत करने में विफल रहता है तो वह आने वाले निर्वाचन में मतदान करने का हकदार नहीं होगा ।

20. संबद्ध प्रश्न जिस पर विचार नहीं किया गया, यह है कि क्या निर्वाचन अधिकारी उन अधिवक्ताओं से विधि व्यवसाय करने का प्रमाणपत्र पेश करने के लिए कह सकते हैं, जिन्होंने वर्ष 2010 के पश्चात् राज्य बार कौंसिल में स्वयं को नामांकित कराया है । इस प्रश्न की प्रतिपरीक्षा करने के लिए मैं यह उचित समझता हूं कि राज्य बार कौंसिल के कृत्यकारियों को इस बारे में सुना जाए कि क्या व्यवसाय करने का प्रमाणपत्र जारी किया गया है और यदि नहीं तो ऐसे प्रमाणपत्र क्यों जारी नहीं किए गए हैं ।

21. राज्य तदर्थ बार कौंसिल के सदस्य श्री मुनियप्पा ने यह दलील दी कि विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र जारी नहीं किए गए हैं क्योंकि अधिवक्ताओं द्वारा पेश किए गए अंक कार्ड यह सुनिश्चित करने के लिए संबंधित विश्वविद्यालयों को भेजे गए हैं कि क्या वे सही हैं । अतः राज्य बार कौंसिल विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र जारी करने की स्थिति में नहीं है ।

22. अतः विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र पेश करने के लिए तारीख 7 अप्रैल, 2017 को सामान्य निकाय की सभा द्वारा अधिरोपित शर्त अनुपालन किए जाने योग्य नहीं है । परिणामतः विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र को पेश करने के लिए बल नहीं दिया जा सकता क्योंकि ऐसा करना संभव नहीं है । अतः निर्वाचन अधिकारियों को विधि व्यवसाय प्रमाणपत्र पेश करने के लिए बल न देने के लिए निदेश दिया गया ।

23. इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल श्री महेश आर. उप्पिन ने यह दलील दी कि ऐसे अधिवक्ता जिन्होंने 2010 के पश्चात् बार कौंसिल में स्वयं को नामांकित कराया है, अखिल भारतीय अधिवक्ता परीक्षा में उत्तीर्ण अधिवक्ताओं से प्रमाणपत्र पेश करने के लिए कहा जाए ।

24. उनका यह अनुरोध स्वीकार किए जाने योग्य है । ऐसे अधिवक्ताओं से जिनके नाम (उपाबंध-एम) सूची में नामांकित हैं और जो 2010 के पश्चात् राज्य बार कौंसिल में रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं, यह अपेक्षित है और उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे उक्त उत्तीर्ण प्रमाणपत्र पेश करें ।

25. निर्वाचन अधिकारियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे उक्त सभी 118 सदस्यों को मोबाइल से एस. एम. एस. द्वारा और सभी संभव संसूचनाओं द्वारा उक्त निदेश जारी करें ।

26. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री पुत्तेगौड़ा ने भी यह वचनबंध किया कि वह अखिल भारतीय अधिवक्ता परीक्षा के संबंध में उत्तीर्ण प्रमाणपत्र और अपने शपथपत्र पेश करने के दायित्व को याचियों को संसूचित करेंगे ।

27. याचिकाएं तद्नुसार निपटाई जाती हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया है ।

याचिकाओं में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

रेमो साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स), बैंगलूरू और अन्य

बनाम

एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड

तारीख 8 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) (2016 के संशोधन अधिनियम संख्या 44 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 13(2), 17(4क) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – वित्तीय संस्था द्वारा संपत्ति स्वामी/मकान मालिक से अधिशेष ऋण की वसूली की ईप्सा किया जाना और इस प्रयोजनार्थ उनके द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लिए जाने को कर्जदार द्वारा अनुकल्पिक अनुतोष की उपलब्धता के आधार पर चुनौती दिया जाना – मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का भौतिक कब्जा वित्तीय संस्था को सौंपे जाने के लिए कर्जदार को निर्देशित किया जाना – चूंकि कर्जदार/किराएदारों को प्रतिभूत आस्तियों पर अधिकारिता प्राप्त ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा अनुकल्पित अनुतोष उपलब्ध है, अतः उनके द्वारा इस प्रयोजनार्थ संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका पोषणीय नहीं है ।

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) (2016 के संशोधन अधिनियम संख्या 44 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 13(2), 14, 17(4क) – प्रतिभूत आस्तियों, जिनमें किराएदार कब्जे में हैं, का कब्जा लिए जाने की प्रक्रिया – मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लिया जाना जिनके अन्तर्गत वह कर्जदार और संपत्ति के अधिभोगियों/किराएदारों को नोटिस जारी करने के लिए बाध्य है – वह मात्र वित्तीय संस्था द्वारा उसके समक्ष फाइल किए गए शपथपत्र के आधार पर कब्जा दिलाए जाने की कार्यवाही नहीं कर सकता – कर्जदारों को ऐसे किसी भी शपथपत्र का खंडन करने का अधिकार प्राप्त है, अतः ऋण वसूली अधिकरण से यह अपेक्षित होता है कि वे प्रतिभूत आस्ति में बसे हुए अधिभोगियों/किराएदारों के सद्भावी होने के प्रश्न को निर्णीत करें –

साथ ही किराएदारों को यह अधिकार नहीं है कि वे वित्तीय संस्था द्वारा चूककर्ता कर्जदार के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ किए जाने का विरोध करें ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 1 मैसर्स एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड ने मकान मालिकों के विरुद्ध 2002 के प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लिया और 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन तारीख 10 नवम्बर, 2016 को उनके ऊपर लगभग 7.26 करोड़ रुपए के बकाया ऋण की वसूली के लिए सूचना जारी की, जैसा कि अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस में उल्लिखित है । प्रत्यर्थी संख्या 1 वित्तीय संस्था ने भी 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रश्नगत प्रतिभूत आस्ति अर्थात् वह भवन, जिसके विभिन्न भागों में वर्तमान आठ याची 2003 और 2017 के मध्य निष्पादित हुए विभिन्न पट्टा करारों, जिनमें से कुछ करार तारीख 10 नवम्बर, 2016 को कर्जदारों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिए गए नोटिस की तामीली के पश्चात् निष्पादित किए गए थे, के अन्तर्गत अपनी-अपनी किराएदारी या पट्टेदारी के अधिकार होने का दावा करते हैं, का कब्जा लिए जाने के प्रयोजनार्थ विद्वान् मजिस्ट्रेट के न्यायालय की शरण ली । प्रत्यर्थी मकान मालिकों/कर्जदारों के आठ किराएदारों/पट्टाधारकों, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 श्री नजमूल हसन, प्रत्यर्थी संख्या 3 मैसर्स इम्पेरियम कंस्ट्रक्शन्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रत्यर्थी संख्या 4 श्री मीर मोहम्मद सालेह और प्रत्यर्थी संख्या 5 श्रीमती सूफिया बेगम हैं और जिन्होंने प्रत्यर्थी संख्या 1 मैसर्स एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड से ऋण प्राप्त किया था, द्वारा प्रस्तुत याचिकाएं फाइल की गई हैं । याचिकाओं का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय पक्षों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन उपलब्ध उचित अनुकल्पिक फोरम अर्थात् ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने का आदेश देने के पूर्व भविष्य में इस प्रकार के मामलों पर अधिनियम की धारा 14 के अधीन विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किए जाने वाले मामलों के प्रयोजनार्थ यह मताभिव्यक्ति भी करना चाहेगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह मताभिव्यक्ति करते हुए एक त्रुटि कारित कर दी थी कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन किराएदारों को किसी नोटिस का जारी

किया जाना अपेक्षित नहीं है । 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन इस सीमा तक किसी भी प्रकार से विवर्जित नहीं करती । इसलिए, यदि विद्वान् मजिस्ट्रेट सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन जारी किए गए किसी पूर्ववर्ती नोटिस या इसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन संबद्ध बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा किए गए किसी पश्चात्वर्ती उपाय को विचार में लाए बिना 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन कार्यवाही का अवलंब लेता है, तो वह संबद्ध कर्जदार को और संपत्ति के किराएदारों और अन्य कब्जेदारों को नोटिस जारी करने के लिए बाध्य है, यदि उसके संज्ञान में लाया जाता है कि प्रतिभूत आस्ति या प्रश्नगत भवन किराए पर दिया गया भवन है । इसी प्रकार से मकान मालिक या कर्जदार का यह कर्तव्य है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष अधिनियम की धारा 14 के अधीन चल रही कार्यवाही में प्रतिभूत आस्तियों/भवन में किराएदारी के संबंध में तथ्य और साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत करें । नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन सभी मामलों में और 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन संबद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा की जानी वाली कार्यवाही में भी किया जाना चाहिए । (पैरा 12, 13 और 14)

अतः, जैसा कि ऊपर अभिकथित है, धारा 14 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को अपवर्जित नहीं करती और इसलिए मजिस्ट्रेट को इस मामले में जांच करनी चाहिए । विद्वान् मजिस्ट्रेट मात्र बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा अधिनियम की धारा 14(1) के परंतुक के अधीन फाइल किए गए एकपक्षीय शपथपत्र के आधार पर कार्यवाही नहीं कर सकते । कर्जदारों को भी ऐसे शपथपत्र का खंडन करने का अधिकार प्राप्त है और भवन के किराएदारों को भी इस मामले में सुने जाने का अधिकार प्राप्त है । द्वितीयतः, किराएदारी पर दिए गए भवन को अधिनियम की धारा 14 के अधीन इस प्रकार के आदेश पारित किए जाने के द्वारा सीधे रिक्त नहीं कराया जा सकता । इस बाबत निर्णय करने का अधिकार ऋण वसूली अधिकरण को है कि अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन किराएदारी सद्भावनापूर्ण है या अन्यथा है । यदि किराएदारी सद्भावनापूर्ण नहीं है और मात्र प्रतिरक्षा के लिए सृजित की गई है, तो ऐसे कब्जेदारों को ऋण वसूली अधिकरण द्वारा अधिनियम की धारा 17(4) के अधीन आदेश पारित किए जाने के द्वारा निष्काषित किया जा सकता है किन्तु यदि किराएदारी लम्बे समय से और अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस जारी

किए जाने के पहले से विद्यमान है और सद्भावनापूर्ण पाई जाती है, तो ऐसे किराएदारों और पट्टेदारों को राज्य किराया नियंत्रण विधि के अन्तर्गत निष्कासन के लिए विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन किए बिना निष्कासित नहीं किया जा सकता । नीलामी क्रेता का दायित्व होगा कि मकान मालिक/कर्जदार, जिसके विरुद्ध उसने 2002 के सरफेसी अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही आरम्भ की है, से अपना धन वसूले जाने के बाबत विधि की ऐसी ही सम्यक् प्रक्रिया को अंगीकृत करे । तथापि, पट्टेदार/किराएदार मकानमालिक या चूक करने वाले कर्जदार के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ किए जाने और उनको चलाए जाने का विरोध नहीं कर सकता । सरफेसी अधिनियम के अन्तर्गत नीलामी क्रेता के पक्ष में किराएदारी का अंतरण विधिक शक्ति के द्वारा अपने आप होगा और ऋण वसूली अधिकरण बैंक के खाते में सीधे ही किराए के संदाय के लिए निर्देशित कर सकता है । क्योंकि इस मामले में याचिओं को अभी 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन एक प्रभावी अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है जिसके अन्तर्गत ऋण वसूली अधिकरण किराएदारी की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार कर सकता है, यह न्यायालय पक्षों द्वारा दी गई दलीलों पर कोई मताभिव्यक्ति नहीं करेगा और इसलिए याचिकाओं को याचियों को इस स्वतंत्रता और निर्देश के साथ निस्तारित किया जाता है कि वे अपने आवेदनों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4-क) के अधीन संबद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर फाइल करें और साथ ही यह निर्देश भी दिया जाता है कि प्रत्यर्थी-वित्तीय संस्था 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन तारीख 20 मई, 2017 के आक्षेपित आदेश के निष्पादन में भवन के उक्त किराएदारी वाले भागों का भौतिक और रिक्त कब्जा प्राप्त करने के लिए प्रपीड़क उपायों का आश्रय नहीं लेगा परन्तु यह तब जबकि याची प्रत्यर्थी संख्या 1-वित्तीय संस्था/बैंक को लिखित में वचनबंध देंगे कि उनके द्वारा प्रत्यर्थी पट्टेदारों/मकान मालिकों को देय किराया का समस्त बकाया और वर्तमान किराया का संदाय प्रत्यर्थी संख्या 2-वित्तीय संस्था को दो सप्ताह की पूर्वोक्त अवधि के भीतर कर दिया जाएगा और वे प्रत्यर्थी संख्या 1-वित्तीय संस्था के पास किराया जमा करना तब तक जारी रखेंगे जब तक कि वे उनके पट्टे/किराया-करार के अधीन उक्त भवन के कब्जे में रहेंगे । अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आक्षेपित आदेश का क्रियान्वयन अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन ऋण वसूली अधिकरण

द्वारा पारित आदेशों के अध्यधीन होगा । (पैरा 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 3 एस. सी. सी. 762 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 530 : **विशाल एन. कलसारिया** बनाम **बैंक आफ इंडिया ;**	4
[2016]	(2016) 14 एस. सी. सी. 532 : **संजीवकुमार सूरजप्रकाश अग्रवाल** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक ;**	17
[2014]	(2014) 6 एस. सी. सी. 1 : **हर्षद गोवर्धन सोनदागर** बनाम **इंटेरनटोनल एस्सेट्स रिकन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड ;**	4
[2007]	आई. एल. आर. 2007 केरल 16 = 2006 (6) ए. आई. आर. केरल आर. 176 : **श्रीमती सुनन्दा कुमारी** बनाम **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक ।**	6

अपीली (सिविल) रिट अधिकारिता : **2017 की रिट याचिका सं. 35597-35601.**

याचियों की ओर से श्री श्रीनाथ आर. के.

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. सुरेश

आदेश

ये याचिकाएं प्रत्यर्थी मकान मालिकों/कर्जदारों के आठ किराएदारों/पट्टाधारकों, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 श्री नजमूल हसन, प्रत्यर्थी संख्या 3 मैसर्स इम्पेरियम कंस्ट्रक्शन्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रत्यर्थी संख्या 4 श्री मीर मोहम्मद सालेह और प्रत्यर्थी संख्या 5 श्रीमती सूफिया बेगम हैं और जिन्होंने प्रत्यर्थी संख्या 1 मैसर्स एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड से ऋण प्राप्त किया था, द्वारा फाइल की गई है ।

2. प्रत्यर्थी संख्या 1 मैसर्स एच. डी. बी. फिनानशियल सर्विसेस लिमिटेड (जिनको इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "वित्तीय संस्था" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) ने मकान मालिकों के विरुद्ध 2002 के

प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "2002 का सरफेसी अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों का अवलंब लिया और 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन तारीख 10 नवम्बर, 2016 को उनके ऊपर लगभग 7.26 करोड़ रुपए के बकाया ऋण की वसूली के लिए सूचना जारी की, जैसा कि अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस में उल्लिखित है ।

3. प्रत्यर्थी संख्या 1 वित्तीय संस्था ने भी 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रश्नगत प्रतिभूत आस्ति अर्थात् वह भवन, जिसके विभिन्न भागों में वर्तमान आठ याची 2003 और 2017 के मध्य निष्पादित हुए विभिन्न पट्टा करारों, जिनमें से कुछ करार तारीख 10 नवम्बर, 2016 को कर्जदारों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिए गए नोटिस की तामीली के पश्चात् निष्पादित किए गए थे, के अन्तर्गत अपनी-अपनी किराएदारी या पट्टेदारी के अधिकार होने का दावा करते हैं, का कब्जा लिए जाने के प्रयोजनार्थ विद्वान् मजिस्ट्रेट के न्यायालय की शरण ली ।

4. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री श्रीनाथ आर. के. ने **विशाल एन. कलसारिया** बनाम **बैंक आफ इंडिया**[1] और **हर्षद गोवर्धन सोनदागर** बनाम **इंटेरनटोनल एस्सेट्स रिकन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड**[2] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने तारीख 20 मई, 2017 के आक्षेपित आदेश, जो प्रदर्श-छ है और जिसके द्वारा उक्त प्रश्नगत संपत्ति का भौतिक कब्जा प्रत्यर्थी सं. 1 वित्तीय संस्था को प्रश्नगत कर्ज की रकम की वसूली के प्रयोजनार्थ हस्तगत किए जाने के लिए निर्देशित किया गया है, पारित करने में त्रुटि कारित की है ।

5. उन्होंने निवेदन किया कि बैंगलूरू के विद्वान् नवम् अपर मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश के पैरा 3 में यह मताभिव्यक्ति करने में घोर त्रुटि कारित की कि कर्जदारों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दी गई नोटिस और सामान्य जनता के अवलोकनार्थ संपत्ति पर चिपकाए गए नोटिस को दृष्टि में रखते हुए

[1] (2016) 3 एस. सी. सी. 762 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 530.

[2] (2014) 6 एस. सी. सी. 1.

वर्तमान याचियों, जो 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन उक्त परिसर में पट्टेदार या किराएदार है, को पृथक् रूप से नोटिस दिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

6. उन्होंने निवेदन किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **श्रीमती सुनन्दा कुमारी** बनाम **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक**[1] द्वारा दिए गए निर्णय, जो उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त दोनों निर्णयों के अत्यधिक पहले पारित किए गए थे, का अवलंब लेने में त्रुटि कारित की है ।

7. इसके विपरीत प्रत्यर्थी संख्या 1 वित्तीय संस्था की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री वी. सुरेश इस न्यायालय के संज्ञान में धारा 17(4क) के उपबंधों को लाए, जिनको 2002 के सरफेसी अधिनियम में 1016 के अधिनियम संख्या 44 द्वारा तारीख 1 सितम्बर, 2016 से एस. ओ. संख्या 2831 द्वारा अंतःस्थापित किया गया था और जो उक्त प्रतिभूत आस्तियों पर अधिकारिता रखने वाले ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन समुचित आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा बैंक या संबद्ध वित्तीय संस्था द्वारा प्रतिभूत हित के प्रवर्तन के विरुद्ध ऐसे किराएदारों या पट्टेदारों को अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध कराए जाने के लिए उपबंधित करते हैं ।

8. शीर्षक "अपील करने का अधिकार" के स्थान पर परिवर्तित शीर्षक "प्रतिभूत ऋणों की वसूली के उपायों के विरुद्ध आवेदन" की धारा 17 के उपबंध और विशेष रूप से धारा 17(4-क) के उपबंध, जिनको तारीख 1 सितम्बर, 2016 से अंतःस्थापित किया गया, इस प्रकार हैं :–

"धारा 17 – प्रतिभूत ऋणों की वसूली के उपायों के विरुद्ध आवेदन –

(1) इस अध्याय के अधीन प्रतिभूत लेनदार या उसके प्राधिकृत अधिकारी द्वारा धारा 13 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट कोई उपाय करने से व्यथित कोई व्यक्ति (जिसमें उधार लेने वाला भी सम्मिलित है) उस तारीख से जिसको ऐसा उपाय किया गया था, पैंतालीस दिन के भीतर इस विषय में अधिकारिता रखने वाले ऋण वसूली अधिकरण (ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाए, आवेदन कर सकेगा) ।

---

[1] आई. एल. आर. 2007 केरल 16 = 2006 (6) ए. आई. आर. केरल आर. 176.

परन्तु उधार लेने वाले और उधार लेने वाले से भिन्न व्यक्ति द्वारा आवेदन करने के लिए भिन्न-भिन्न फीसें विहित की जा सकेंगी ।

(1क) से (4) ....

(4क) जहां –

(i) कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्रस्तुत करते समय किसी प्रतिभूत आस्ति के संबंध में किसी किराएदारी या पट्टागत अधिकार का दावा करता है, तो ऋण वसूली अधिकरण को ऐसे किसी दावे के संबंध में पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए मामले की तथ्यों और साक्ष्य के परीक्षण के पश्चात् प्रतिभूत हित के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ इस बाबत परीक्षण करने की अधिकारिता प्राप्त होगी कि क्या पट्टा या किराएदारी –

(क) व्यतीत हो चुकी है या विनिर्धारित की जा चुकी है; या

(ख) 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम (1882 का 4) की धारा 65-क के विपरीत है; या

(ग) पट्टे की शर्तों के विपरीत है, या

(घ) अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन बैंक द्वारा व्यतिक्रम और मांग की सूचना के जारी किए जाने के पश्चात् सृजित की गई है; और

(ii) ऋण वसूली अधिकरण संतुष्ट है कि यदि प्रतिभूत आस्ति के अंतर्गत दावाधीन किराएदारी के अधिकार या पट्टाधारक के अधिकार खंड (i) के उपखंड (क) या उपखंड (ख) या उपखंड (ग) या उपखंड (घ) के अंतर्गत आते हैं, तो ऋण वसूली अधिकरण तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में समाविष्ट किसी विपरीत बात के होते हुए भी ऐसा कोई भी आदेश पारित कर सकता है जो वह इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार उचित प्रतीत करे ।”

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

9. इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 1 वित्तीय संस्था के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि इस मामले में याचियों/किराएदारों को ऋण वसूली

अधिकरण की शरण लेने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए ।

10. उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी वित्तीय संस्था दो सप्ताह की अवधि तक संपत्ति का भौतिक कब्जा प्राप्त किए जाने के द्वारा प्रतिभूत हित का प्रवर्तन उतावलेपन में कोई कार्यवाही करके या अन्य प्रपीड़न वाले उपायों को अपनाए जाने के द्वारा नहीं करेगी यदि याची/किराएदार न केवल ऊपर उद्धृत धारा 17(4क) के अधीन आज की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर ऋण वसूली अधिकरण की शरण में चले जाएं, बल्कि उनके द्वारा प्रत्यर्थी मकान मालिक/कर्जदार को संदेय वर्तमान किराए की बकाया रकम भी जमा कर दें ।

11. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए उपरोक्त निवेदनों से याचियों के विद्वान् काउंसेल पूर्णतया सहमत हैं ।

12. यह न्यायालय पक्षों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन उपलब्ध उचित अनुकल्पिक फोरम अर्थात् ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने का आदेश देने के पूर्व भविष्य में इस प्रकार के मामलों पर अधिनियम की धारा 14 के अधीन विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किए जाने वाले मामलों के प्रयोजनार्थ यह मताभिव्यक्ति भी करना चाहेगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह मताभिव्यक्ति करते हुए एक त्रुटि कारित कर दी थी कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन किराएदारों को किसी नोटिस का जारी किया जाना अपेक्षित नहीं है । 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन इस सीमा तक किसी भी प्रकार से विवर्जित नहीं करती ।

13. इसलिए, यदि विद्वान् मजिस्ट्रेट सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन जारी किए गए किसी पूर्ववर्ती नोटिस या इसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन संबद्ध बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा किए गए किसी पश्चात्वर्ती उपाय को विचार में लाए बिना 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन कार्यवाही का अवलंब लेता है, तो वह संबद्ध कर्जदार को और संपत्ति के किराएदारों और अन्य कब्जेदारों को नोटिस जारी करने के लिए बाध्य है, यदि उसके संज्ञान में लाया जाता है कि प्रतिभूत आस्ति या प्रश्नगत भवन किराए पर दिया गया भवन है । इसी प्रकार से मकान मालिक या कर्जदार का यह कर्तव्य है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष अधिनियम की धारा 14 के अधीन चल रही कार्यवाही में प्रतिभूत

आस्तियों/भवन में किराएदारी के संबंध में तथ्य और साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत करें ।

14. नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन सभी मामलों में और 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन संबद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा की जानी वाली कार्यवाही में भी किया जाना चाहिए ।

15. मामले के इस पहलू पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी **हर्षद गोवर्धन सोनदागर इंटरनेशनल अस्सेट्स रिकन्सट्रकशन कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय के पैरा 21 में निम्नलिखित शब्दों में विचार किया गया था । उक्त निर्णय के सुसंगत पैरा 21 को तुरन्त संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया जा रहा है :—

"इसलिए, जब कोई पट्टेदार .... जब इस प्रकार का कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तो मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट नोटिस देगा और उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा जो पट्टेदार होने का दावा कर रहा है और साथ ही प्रतिभूत लेनदार को भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार नोटिस देगा और तत्पश्चात् निर्णय लेगा । यदि मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट इस बाबत संतुष्ट है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65क की अपेक्षाओं के अनुसार बंधक सृजित किए जाने के पूर्व या पश्चात् विधिमान्य रूप से कोई पट्टा सृजित किया गया है और पट्टे को संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 के अनुसार विनिर्धारित नहीं किया गया है, तो वह प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्ति का कब्जा प्रदान किए जाने के बाबत कोई आदेश पारित नहीं कर सकता । किन्तु यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वास्तव में संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65-क की अपेक्षाओं को संतुष्ट किए जाने के प्रयोजनार्थ बंधक के सृजन के पूर्व या पश्चात् विधिमान्य रूप से कोई पट्टा सृजित नहीं किया गया या यद्यपि विधिमान्य रूप से पट्टा सृजित किया गया था, फिर भी पट्टा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 के अनुसार विनिर्धारित किया जा चुका है, तो वह प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लेनदार को प्रदान किए जाने के बाबत आदेश पारित कर सकता है ।"

16. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **विशाल एन. कलसारिया** बनाम **बैंक आफ इंडिया** (उपरोक्त) वाले मामले में जो अभिनिर्धारित किया, वह

निम्नलिखित है :–

"32. यदि हम उपरोक्त विधिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए बैंकों की ओर से किए गए विधिक निवेदनों को यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ स्वीकार कर लेते हैं कि सरफेसी अधिनियम के उपबंध किराएदारी पर दिए गए भवन, जो मकान मालिक द्वारा ऋण के संदाय में चूक के पश्चात् बैंक की प्रतिभूत आस्ति बन चुका है, से किसी किराएदार को निष्कासित किए जाने के लिए बैंक को अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ विभिन्न किराया नियंत्रण अधिनियमों के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव रखते हैं और विभिन्न किराया नियंत्रण अधिनियमों के उपबंधों के अधीन अधिकथित प्रक्रिया और इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों की शृंखला में दिए गए विनिश्चयों से छूट प्रदान कर देते हैं, तो राज्य विधान-मंडलों की विधायी शक्तियां निरावृत हो जाएंगी जिसका परिणाम यह होगा कि राज्य विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित किए गए समय ऐसी स्थिति की संकल्पना नहीं की गई थी और इसलिए बैंकों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा जो निर्वचन किए जाने की ईप्सा की गई है, इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह निर्वचन विधि की दृष्टि में पूर्णतया मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है ।

33. हम प्रत्यर्थी बैंकों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार कर पाने में असमर्थ हैं ।

34. पूर्वोक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए, उच्च न्यायालय/मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं और अपीलें स्वीकार की जाती है । हम आगे निदेशित करते हैं कि वे रकमें, जो इस न्यायालय के सशर्त अंतरिम आदेश के मतावलम्बन में किराए के रूप में मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट/मजिस्ट्रेट के न्यायालय में जमा की गई हैं या संबद्ध बैंकों में जमा की गई हैं, का समायोजन इन अपीलों में अपीलार्थियों के संबंध में संबद्ध बैंकों द्वारा देनदारों/किराएदारों द्वारा देय ऋण के बाबत किया जाएगा । सशर्त अंतरिम आदेश द्वारा बढ़े हुए किराए का संदाय अलग-अलग बैंकों को जारी रहेगा जिस रकम को भी देनदारों/मकान मालिकों के ऋणों की बाबत समायोजित किया जाएगा । समस्त लम्बित आवेदनों का तद्नुसार निस्तारण किया जाता है ।"

17. **संजीवकुमार सूरजप्रकाश अग्रवाल** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक**[1] वाले मामले में भी माननीय उच्चतम न्यायालय ने मजिस्ट्रेट द्वारा 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन इसी प्रकार की जांच कराए जाने के लिए निम्नलिखित शब्दों में निर्देशित किया था :–

"इजाजत दी गई । इस अपील में विवाद यह है कि क्या अपीलार्थी के पक्ष में सृजित किराएदारी दिखावटी है या नहीं । यह विवादित नहीं है कि इस पहलू पर न्यायनिर्णयन नहीं हुआ । सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन इस पहलू का न्यायनिर्णयन मुम्बई के एस्प्लडे न्यायालय के मुख्य मैट्रोपोलिटेन मजिस्ट्रेट द्वारा किया जा सकता है ।

2. बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री अमरेन्द्र शरण ने निवेदन किया कि वास्तव में मजिस्ट्रेट ने मध्यक्षेपी आवेदन को निर्णीत करते समय इस पहलू की जांच की थी ।

3. हम नहीं समझते कि किराएदारी के संबंध में इस विवाद्यक का न्यायनिर्णयन किया जाना पर्याप्त होगा । हमारे विचार में अपीलार्थी की मौजूदगी में जांच कराया जाना न्यायनिर्णयन की दृष्टि से उचित होगा इसलिए, इस अपील का निस्तारण मजिस्ट्रेट को यह निर्देश देते हुए किया जाता है कि वे तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में सृजित किराएदारी की सत्यता के संबंध में जांच कराएं ।"

18. कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **मैसर्स स्वास्त्ययन एग्रो इंडस्ट्रीज** बनाम **भारत संघ** वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि जिला मजिस्ट्रेट सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन और धारा 14(1)(क) और (ख) के अनुसार बैंक को पुलिस की सहायता से प्रतिभूत आस्तियों का सीधे कब्जा लेने के लिए निर्देशित नहीं कर सकता । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने जो अभिनिर्धारित किया, वह निम्नलिखित है :–

"मेरे विचार में जिला मजिस्ट्रेट ने 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 द्वारा विधि की दृष्टि में उसमें निहित अधिकारिता के आधिक्य में कार्य किया । 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 उपधारा (1क) को सम्मिलित किए जाने के पूर्व जिला मजिस्ट्रेट से अपेक्षा करती थी कि वह प्रतिभूत लेनदार के अनुरोध पर सहायता

---

[1] (2016) 14 एस. सी. सी. 532.

प्रदान करेगा :

(क) प्रतिभूत आस्तियों और उससे संबंधित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने, और

(ख) ऐसी सभी प्रतिभूत आस्तियों और उनसे संबंधित दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को अग्रेषित करने के लिए ।

प्रस्तुत मामले में बंकुरा के जिला मजिस्ट्रेट ने ऐसा नहीं किया । जिला मजिस्ट्रेट ने प्रतिभूत आस्तियों और दस्तावेजों का कब्जा लेने और तत्पश्चात् उन प्रतिभूत आस्तियों और दस्तावेजों को अपने पास से प्रतिभूत लेनदारों को अग्रेषित करने के संबंध में कोई कार्यवाही नहीं की । जिला मजिस्ट्रेट की सम्पूर्ण कार्यवाही तारीख 31 दिसम्बर, 2012 के ज्ञापन संख्या 3019/1(9)/आर में परिणित हो गई और जिला मजिस्ट्रेट बैंक के शाखा प्रबंधक को पुलिस और पत्रसयेर के ब्लाक भूमि और भूमि सुधार अधिकारी की सहायता से कब्जा लेने की अनुज्ञा प्रदान करने के लिए अग्रसर हुआ । यह पुनः 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 की आज्ञा के विपरीत था । 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 प्रतिभूत आस्तियों और उनसे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने के लिए स्वयं जिला मजिस्ट्रेट को अनुज्ञा प्रदान करती है । वह 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन कार्य करते हुए बैंक के शाखा प्रबंधक को उनका कब्जा लेने के लिए पुलिस सहायता के लिए निर्देशित नहीं कर सकता । अतः, ज्ञापन 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट में निहित शक्तियों के आधिक्य में था ।"

2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 इस प्रकार है :–

"**मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिभूत लेनदार की प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लेने में सहायता करना** – (1) जहां किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा प्रतिभूत लेनदार द्वारा लिया जाना अपेक्षित है या यदि किसी प्रतिभूत आस्ति का, प्रतिभूत लेनदार द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन विक्रय या अंतरित किया जाना अपेक्षित है वहां प्रतिभूत लेनदार, ऐसी किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा या नियंत्रण लेने के प्रयोजनार्थ, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, या जिला मजिस्ट्रेट, जिसकी अधिकारिता के भीतर ऐसी कोई प्रतिभूत आस्ति या उससे संबंधित अन्य दस्तावेज स्थित हैं या पाए जाते हैं,

लिखित में उनका कब्जा लेने के लिए आवेदन कर सकेगा और, यथास्थिति, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट, उसे ऐसा निवेदन किए जाने पर –

(क) ऐसी आस्ति और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा ले लेगा, और

(ख) ऐसी आस्ति और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को अग्रेषित करेगा :

परन्तु प्रतिभूत लेनदार द्वारा किए गए किसी आवेदन के साथ प्रतिभूत लेनदार के प्राधिकृत अधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से प्रतिज्ञात एक शपथपत्र संलग्न किया जाएगा जिसमें यह घोषित किया जाएगा कि –

(i) आवेदन फाइल करने की तारीख को अनुदत्त वित्तीय सहायता की कुल रकम और बैंक का कुल दावा ;

(ii) उधार लेने वाले ने विभिन्न संपत्तियों पर प्रतिभूत हित सृजित किया है और बैंक या वित्तीय संस्था ऐसी संपत्तियों पर विधिमान्य और अस्तित्वशील प्रतिभूत हित धारण किए हुए है तथा बैंक या वित्तीय संस्था का दावा परिसीमा अवधि के भीतर है ;

(iii) उधार लेने वाले ने उपर्युक्त उपखंड (ii) में निर्दिष्ट संपत्तियों का ब्यौरा देते हुए विभिन्न संपत्तियों पर प्रतिभूत हित सृजित किया है ;

(iv) उधार लेने वाले ने विनिर्दिष्ट रकम के अनुदत्त कुल योग की वित्तीय सहायता का प्रतिसंदाय करने में व्यतिक्रम किया है ;

(v) वित्तीय सहायता के प्रतिसंदाय में ऐसे व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप उधार लेने वाले के खाते की एक गैर-निष्पादनीय आस्ति के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया है ;

(vi) इस बात की अभिपुष्टि करते हुए कि धारा 13 की उपधारा (2) के उपबंधों द्वारा यथा अपेक्षित साठ दिन की अवधि की सूचना की, जिसमें वित्तीय सहायता के उस संदाय की,

जिसका व्यतिक्रम किया गया है, मांग की गई है, उधार लेने वाले पर तामील कर दी गई है ;

(vii) उधार लेने वाले से सूचना के उत्तर में प्राप्त आक्षेप या अभ्यावेदन पर प्रतिभूत लेनदार द्वारा विचार कर लिया गया है और ऐसे आक्षेप या अभ्यावेदन को स्वीकार न करने के कारण उधार लेने वाले को संसूचित कर दिए गए हैं ;

(viii) उधार लेने वाले ने उपर्युक्त सूचना के बावजूद वित्तीय सहायता का कोई प्रतिसंदाय नहीं किया है और इसलिए प्राधिकृत अधिकारी, मूल अधिनियम की धारा 14 के साथ पठित धारा 13 की उपधारा (4) के उपबंधों के अधीन प्रतिभूत आस्तियों को कब्जे में लेने का हकदार है ;

(ix) इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों का अनुपालन किया गया है :

परन्तु यह और कि प्राधिकृत अधिकारी से शपथपत्र प्राप्त होने पर, यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, शपथपत्र की अंतर्वस्तुओं के प्रति समाधान हो जाने के पश्चात् प्रतिभूत आस्तियों को कब्जे में लेने के प्रयोजन के लिए आवेदन की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर उपयुक्त आदेश पारित करेगा :

परन्तु यह भी कि यदि मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 30 दिनों की उपरोक्त अवधि के भीतर उन कारणोंवश जो उसके नियंत्रण के बाहर हों, कोई आदेश पारित नहीं किया जाता, तो वह इसके लिए लिखित में कारण अभिलिखित करने के पश्चात्, उस अन्तिम अवधि के भीतर, जो कुल मिलाकर साठ दिनों से अधिक नहीं हो सकती, आदेश पारित कर सकेगा :

परन्तु यह भी कि प्रथम परन्तुक में उल्लिखित शपथपत्र फाइल करने की अपेक्षा इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख को, यथास्थिति, किसी जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित कार्यवाही को लागू नहीं होगी ।

(1क) जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को –

(i) ऐसी आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का

कब्जा लेने के लिए, अधिकारी ; और

(ii) ऐसी आस्तियां और दस्तावेज प्रतिभूत लेनदार को अग्रेषित करने के लिए,

प्राधिकृत कर सकेगा ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट उपधारा (1) के उपबंधों का अनुपालन सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ, ऐसे कदम उठाएगा या उठवाएगा और ऐसी शक्ति का प्रयोग करेगा या करवाएगा जो उसके राज्य में आवश्यक हो ।

(3) इस धारा के अनुसरण में मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा किया गया कोई कार्य किसी न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।"

19. अतः, जैसा कि ऊपर अभिकथित है, धारा 14 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को अपवर्जित नहीं करती और इसलिए मजिस्ट्रेट को इस मामले में जांच करनी चाहिए । विद्वान् मजिस्ट्रेट मात्र बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा अधिनियम की धारा 14(1) के परंतुक के अधीन फाइल किए गए एकपक्षीय शपथपत्र के आधार पर कार्यवाही नहीं कर सकते । कर्जदारों को भी ऐसे शपथपत्र का खंडन करने का अधिकार प्राप्त है और भवन के किराएदारों को भी इस मामले में सुने जाने का अधिकार प्राप्त है । द्वितीयतः, किराएदारी पर दिए गए भवन को अधिनियम की धारा 14 के अधीन इस प्रकार के आदेश पारित किए जाने के द्वारा सीधे रिक्त नहीं कराया जा सकता । इस बाबत निर्णय करने का अधिकार ऋण वसूली अधिकरण को है कि अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन किराएदारी सद्भावनापूर्ण है या अन्यथा है । यदि किराएदारी सद्भावनापूर्ण नहीं है और मात्र प्रतिरक्षा के लिए सृजित की गई है, तो ऐसे कब्जेदारों को ऋण वसूली अधिकरण द्वारा अधिनियम की धारा 17(4) के अधीन आदेश पारित किए जाने के द्वारा निष्कासित किया जा सकता है किन्तु यदि किराएदारी लम्बे समय से और अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस जारी किए जाने के पहले से विद्यमान है और सद्भावनापूर्ण पाई जाती है, तो ऐसे किराएदारों और पट्टेदारों को राज्य किराया नियंत्रण विधि के अन्तर्गत निष्कासन के लिए विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन किए बिना

निष्कासित नहीं किया जा सकता, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **विशाल एन. कलसारिया** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । नीलामी क्रेता का दायित्व होगा कि मकान मालिक/कर्जदार, जिसके विरुद्ध उसने 2002 के सरफेसी अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही आरम्भ की है, से अपना धन वसूले जाने के बाबत विधि की ऐसी ही सम्यक् प्रक्रिया को अंगीकृत करे । तथापि, पट्टेदार/किराएदार मकान मालिक या चूक करने वाले कर्जदार के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ किए जाने और उनको चलाए जाने का विरोध नहीं कर सकता । सरफेसी अधिनियम के अन्तर्गत नीलामी क्रेता के पक्ष में किराएदारी का अंतरण विधिक शक्ति के द्वारा अपने आप होगा और ऋण वसूली अधिकरण बैंक के खाते में सीधे ही किराए के संदाय के लिए निर्देशित कर सकता है ।

20. क्योंकि इस मामले में याचिकों को अभी 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन एक प्रभावी अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है जिसके अन्तर्गत ऋण वसूली अधिकरण किराएदारी की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार कर सकता है, यह न्यायालय पक्षों द्वारा दी गई दलीलों पर कोई मताभिव्यक्ति नहीं करेगा और इसलिए याचिकाओं को याचियों को इस स्वतंत्रता और निर्देश के साथ निस्तारित किया जाता है कि वे अपने आवेदनों को 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 17(4-क) के अधीन संबद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर फाइल करें और साथ ही यह निर्देश भी दिया जाता है कि प्रत्यर्थी-वित्तीय संस्था 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन तारीख 20 मई, 2017 के आक्षेपित आदेश के निष्पादन में भवन के उक्त किराएदारी वाले भागों का भौतिक और रिक्त कब्जा प्राप्त करने के लिए प्रपीड़क उपायों का आश्रय नहीं लेगा परन्तु यह तब जबकि याची प्रत्यर्थी संख्या 1-वित्तीय संस्था/बैंक को लिखित में वचनबंध देंगे कि उनके द्वारा प्रत्यर्थी पट्टेदारों/मकान मालिकों को देय किराया का समस्त बकाया और वर्तमान किराया का संदाय प्रत्यर्थी संख्या 2-वित्तीय संस्था को दो सप्ताह की पूर्वोक्त अवधि के भीतर कर दिया जाएगा और वे प्रत्यर्थी संख्या 1-वित्तीय संस्था के पास किराया जमा करना तब तक जारी रखेंगे जब तक कि वे उनके पट्टे/किराया-करार के अधीन उक्त भवन के कब्जे में रहेंगे । अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित किए गए आक्षेपित आदेश का क्रियान्वयन अधिनियम की धारा 17(4क) के अधीन ऋण वसूली अधिकरण द्वारा पारित आदेशों के अध्यधीन होगा ।

21. आज से चार सप्ताह के पश्चात् आगे की कार्यवाही का अनुक्रम, जहां तक प्रश्नगत प्रतिभूत आस्ति/भवन के याची किराएदारों का संबंध है, ऋण वसूली अधिकरण द्वारा पारित अग्रिम आदेशों के अध्यधीन होगा ।

22. यहां पर यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आदेश फिलहाल उक्त परिसर में केवल वर्तमान पट्टेदारों/किराएदारों के मामले पर लागू होगा और वर्तमान रिट याचिकाओं में मुख्य कर्जदार/मकान मालिकों/प्रत्यर्थियों की किसी अन्य कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगा ।

23. तद्नुसार, रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

इस आदेश की एक प्रति संबद्ध पक्षों और विद्वान् निचले न्यायालय, जिसने 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन आदेश पारित किया और बैंगलूरू के ऋण वसूली अधिकरण को भेजी जाए और साथ ही मुख्य सचिव और जिला मजिस्ट्रेट को भी संबद्ध मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट/जिला मजिस्ट्रेट, जिन्होंने अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किया, के संज्ञान में लाने के प्रयोजनार्थ भेजी जाए ।

तद्नुसार, याचिकाओं का निपटारा किया गया ।

अवि.

सहीदुन निसा (सुश्री)

बनाम

उप राज्यपाल

तारीख 31 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति बिश्वनाथ सोमाद्देर और न्यायमूर्ति देबी प्रसाद डे

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (2007 का 56) – धारा 22(2), 2(च) – वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण – संपत्ति की परिभाषा में वरिष्ठ नागरिकों की संपत्ति में जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित मूर्त या अमूर्त सम्पत्ति में अधिकार या हित का सम्मिलित होना – संपत्ति के स्वामित्व के वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे किसी सम्पत्ति के स्वामित्व के संबंध में किसी कानून की योजना के अंतर्गत संरक्षण की ईप्सा करें ।

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 – वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण – यदि वृद्ध दंपत्ति/पिता-माता यदि अपने बच्चों के साथ प्रसन्न नहीं हैं और उनके मध्य समझौते और शांतिपूर्ण जीवनयापन की समस्त संभाव्यताएं समाप्त हो चुकी हैं, तो बच्चों को माता-पिता की संपत्ति को रिक्त करने के लिए निर्देशित किया जा सकता है और अधिनियम में निष्कासन आदेश पारित किए जाने से विवर्जित नहीं किया गया है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि जिला उत्तर और मध्य अंडमान के बारातंग के निकट के एक ग्राम के निवासी शेख खलील नामक एक व्यक्ति (जिसकी आयु लगभग 80 वर्ष है), ने तारीख 16 जून, 2015 को अपने पुत्र श्री एस. के. हसमुद्देन और पुत्री सुश्री सहीदुन निसा के विरुद्ध 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम के अधीन गठित भरणपोषण अधिकरण के समक्ष एक शिकायत फाइल की । मुख्य आरोप यह था कि उसके पुत्र और पुत्री उसको और उसकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा (जो एक सत्तर वर्षीय महिला है) को यातना दे रहे हैं और उनको उनकी गृह संपत्ति से बेदखल करने का प्रयास कर रहे हैं । इसी संबंध में तारीख 28 मई, 2015 को एक निदेश भी

भरणपोषण अधिकरण द्वारा मुख्य सचिव, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के कार्यालय से प्राप्त किया गया । सभी पक्षों को भरणपोषण अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने और पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए सूचना जारी की गई । भरणपोषण अधिनियम ने सभी पक्षों को सुनने के पश्चात् तारीख 14 जनवरी, 2016 को आदेश पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया कि श्री शेख खलील और उनकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा अपनी पुत्री सहीदुन निसा के साथ प्रसन्न नहीं है और उनके रिश्ते इस सीमा तक खराब हो चुके हैं कि उन्होंने एक दूसरे के साथ लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौच आरम्भ कर दिया है और अब उनके मध्य समझौते और एक साथ शांतिपूर्वक रहने के अवसर अत्यंत कम हैं, 2007 का अधिनियम माता-पिता को सम्मिलित करते हुए वरिष्ठ नागरिकों के भरणपोषण पर विचार करता है, इसमें एक पृथक् अध्याय (अध्याय-V) समाविष्ट है जो वरिष्ठ नागरिकों को जीवन और सम्पत्ति के संरक्षण पर विचार करता है और वर्तमान मामला इसी अध्याय से संबंधित है, अधिनियम में परिभाषित कल्याण एक व्यापक शब्द है जिसमें वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक समस्त सुविधाएं सम्मिलित हैं, उनको शारीरिक और चिकित्सीय सहायता के अतिरिक्त सम्यक् रूप से सम्मान और संवेदनशील सहारा को "कल्याण" की परिभाषा से पृथक् नहीं किया जा सकता, किसी के लिए इस बात से निराशाजनक और दुखद बात कुछ नहीं हो सकती जब उसके स्वयं के बच्चे उसके साथ उचित व्यवहार नहीं करते और वह भी 80 वर्ष की वृद्धावस्था वाली आयु में । साथ ही भरणपोषण अधिकरण ने श्री शेख खलील की पुत्री श्रीमती सहीदुन निसा को निर्देशित किया कि वे अपने पिता की दुकान और मकान को आदेश जारी किए जाने की तारीख से 60 दिनों के भीतर रिक्त कर दें और बारातंग के थानाध्यक्ष को भी श्री शेख खलील और उनकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा के जीवन और सम्पत्ति को संरक्षित करने के बाबत निर्देशित किया गया । इस आदेश के विरुद्ध श्रीमती कमरून निसा ने, 2007 के अधिनियम के अन्तर्गत गठित अपीली अधिकरण के समक्ष कानूनी अपील फाइल की । अपीली अधिकरण ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए कि उसको वरिष्ठ नागरिक के घर से उसकी पुत्री को बेदखल करने की शक्ति प्राप्त नहीं है, तारीख 17 जून, 2016 को एक नया आदेश पारित कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर श्री शेख खलील और उनकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा ने रिट न्यायालय की शरण ली जिसने तारीख 17 अगस्त, 2016 को आक्षेपित आदेश पारित किया जो प्रस्तुत अपील, अर्थात् 2017 की रिट याचिका संख्या 43 में चुनौती की विषयवस्तु है । रिट

याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिणामस्वरूप, विधेयक को संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की सहमति तारीख 29 दिसम्बर, 2007 को प्राप्त हो गई और यह विधेयक कानून की पुस्तक में 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम के रूप में दर्ज हो गया । यह कानून अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में तारीख 21 मई, 2008 को प्रभाव में आया । इस कानून के उद्देश्यों और कारणों के कथन, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, अन्य बातों के साथ वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए समुचित तंत्र का संस्थाकरण किए जाने के लिए स्पष्टतः उपबंधित करते हैं । भरणपोषण अधिकरण के स्वरूप में यही वह तंत्र है जो बुजुर्ग दम्पत्ति-एक 80 वर्ष के पुरुष और उसकी 70 वर्ष की पत्नी की दयनीय स्थिति पर मामले पर जमीनी जांच किए जाने के पश्चात् विचार करता है । यह तारीख 14 जनवरी, 2016 के आदेश से स्पष्ट है जिसमें भरणपोषण अधिकरण ने अन्य बातों के साथ इस सीमा तक मताभिव्यक्ति की कि बुजुर्ग दम्पत्ति अपनी विवाहित पुत्री के साथ प्रसन्न नहीं थे और उनके संबंध इस सीमा तक खराब हो चुके थे कि उनमें लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौच आरम्भ हो गया था और यहां तक कि अधिकरण के समक्ष भी हुआ । अधिकरण ने आगे मताभिव्यक्ति की कि पक्षों के मध्य समझौते और शांतिपूर्वक एक साथ रहने के अवसर अत्यन्त कम हैं । इन परिस्थितियों के अन्तर्गत अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मामला व्यापक रूप से 2007 के उक्त अधिनियम के अध्याय 7, जो वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण पर विचार करता है, के अन्तर्गत आता है । ऐसे ही अन्य कारणोंवश, जैसा कि अधिकरण ने श्रीमती सहीदुन निसा (इसमें कि अपीलार्थी) को उसके पिता की दुकान और मकान को आदेश के जारी किए जाने की तारीख से 60 दिनों के भीतर रिक्त किए जाने के लिए निर्देशित किया । बारातंग के थानाध्यक्ष को भी श्री शेख खलील और श्रीमती एक. के. कमरून के जीवन और स्वातंत्र्य का संरक्षण सुनिश्चित किए जाने और आदेश का पालन सुनिश्चित किए जाने के लिए निर्देशित किया गया था । न्यायालय 2007 के अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का परिशीलन करते हुए अवेक्षित किया कि इस कानूनी की योजना यह सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है कि कोई वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन व्यतित कर सके । वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन व्यतीत करने के प्रयोजनार्थ उनके

"जीवन" और "संपत्ति" के संरक्षण की अपेक्षा करते हैं । उद्देश्यों और कारणों का कथन, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, स्पष्टतः वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए उपयुक्त तंत्र के संस्थाकरण के लिए उपबंधित करता है शब्द "संपत्ति" को 2007 के अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (च) के अधीन कानूनी रूप से परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :– "संपत्ति से किसी प्रकार की संपत्ति अभिप्रेत है, चाहे वह जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित, मूर्त या अमूर्त हो और जिसमें ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित सम्मिलित हैं ।" अतः यह देखा जाता है कि कानूनी परिभाषा "ऐसी संपत्तियों में अधिकार या हित" को अपनी परिधि के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है । इसलिए किसी वरिष्ठ नागरिक के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह ऐसी किसी संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में किसी कानून की योजना के अन्तर्गत संरक्षण की ईप्सा करे । 2007 के अधिनियम की धारा 22(2), जो अध्याय 5 के अन्तर्गत आती है, वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार द्वारा व्यापक कार्य योजना विहित किए जाने के बारे में उपबंधित करती है । 2007 के अधिनियम की योजना, जो अन्य बातों के साथ वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के बाबत उपबंधित करती हैं, कहीं पर भी विनिर्दिष्ट रूप से किसी ऐसी संपत्ति, जिसमें कोई बुजुर्ग संरक्षक या वरिष्ठ नागरिक कोई अधिकार या हित रखता है, के संबंध में किसी सक्षम अधिकरण द्वारा निष्कासन/रिक्ति का कोई आदेश पारित किए जाने से विवर्जित नहीं करती, यदि वह आदेश वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति, दोनों के संरक्षण के लिए पारित किया जाना अपेक्षित है । अतः, कानून इस प्रकार के किसी भी आदेश, जैसा कि भरणपोषण अधिकरण द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2016 को पारित किया गया, की परिधि का सही-सही मूल्यांकन करते हुए जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है । (पैरा 13, 14, 15 और 16)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एम. ए. टी. सं. 1719.

2017 की रिट याचिका संख्या 43 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 17 अगस्त, 2017 का पारित निर्णय और आदेश से उद्भूत ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बी. के. दास

प्रशासन की ओर से श्री एस. सी. मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्रीमती अंजली नाग

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बिश्वनाथ सोमाद्देर ने दिया ।

न्या. सोमाद्देर – अपील के ज्ञापन (जिसकी मूल प्रति कलकत्ता में फाइल की गई थी) की एक प्रति अभिलेख पर रखी जाए । यदि एक बार अपील का मूल ज्ञापन (जिसको कोलकत्ता से पहले ही सर्किट न्यायपीठ के विद्वान् रजिस्ट्रार के तारीख 31 अक्तूबर, 2017 को प्रस्तुत किए गए टिप्पण द्वारा भेजा जा चुका है) को रजिस्ट्री द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो उसको इस फाइल में रखा जाएगा ।

2. पक्षों की सहमति से इस अपील को आज के दिवस की कार्यसूची में सम्मिलित माना जाता है और इसको स्थगन आवेदन के साथ विचारणार्थ स्वीकार किया जाता है ।

3. प्रस्तुत अपील 2017 की रिट याचिका सं. 43 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 17 अगस्त, 2017 (श्री शेख खलील और एक अन्य बनाम उप राज्यपाल और अन्य वाले मामले) के निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई है । हमारे समक्ष उपस्थित अपीलार्थी सहीदुन निसा रिट कार्यवाही में निजी प्रत्यर्थी संख्या 5 थी । रिट न्यायालय के समक्ष चुनौती की विषयवस्तु 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "2007 का उक्त अधिनियम" कह कर निर्दिष्ट किया गया है) के अधीन अपीली अधिकरण द्वारा पारित तारीख 17 जून, 2016 का आदेश था ।

4. हम अभिलेख पर उपलब्ध मामले के तथ्यों के आधार पर यह अवेक्षित करते हैं कि जिला उत्तर और मध्य अंडमान के बारातंग के निकट के एक ग्राम के निवासी शेख खलील नामक एक व्यक्ति (जिसकी आयु लगभग 80 वर्ष है), ने तारीख 16 जून, 2015 को अपने पुत्र श्री एस. के. हसमुद्देन और पुत्री सुश्री सहीदुन निसा के विरुद्ध 2007 के उक्त अधिनियम के अधीन गठित भरणपोषण अधिकरण के समक्ष एक शिकायत फाइल की थी । मुख्य आरोप यह था कि उसके पुत्र और पुत्री उसको और उसकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा (जो एक सप्तति वर्षीय महिला है) को यातना दे रहे हैं और उनको उनकी गृह संपत्ति से बेदखल करने का प्रयास कर रहे हैं । इसी संबंध में तारीख 28 मई, 2015 को एक निदेश भी भरणपोषण अधिनियम द्वारा मुख्य सचिव, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के कार्यालय से प्राप्त किया गया ।

5. परिणामस्वरूप सभी पक्षों को भरणपोषण अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने और उनके पक्षकथन को प्रस्तुत करने के लिए सूचना जारी की गई । श्री शेख खलील और उसकी पत्नी श्रीमती एस. के. कमरून निसा, उनकी पुत्री सहीदुन निसा और उनके दो पुत्र श्री हरमुद्दीन और श्री नियामुद्दीन कार्यवाही में उपस्थित हुए । कार्यवाही तारीख 14 जनवरी, 2016 को आदेश पारित किए जाने के साथ समाप्त हो गई, जिसके सुसंगत भाग नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं :–

> "कार्यवाही के दौरान यह पाया गया कि याची और उसकी पत्नी उनकी पुत्री श्रीमती एस. के. सहीदुन निसा के साथ प्रसन्न नहीं हैं । उनके रिश्ते इस सीमा तक खराब हो चुके हैं कि उन्होंने एक-दूसरे के साथ झगड़ा करना और गाली-गलौच करना आरम्भ कर दिया है । पक्षों के मध्य समझौते और एक-साथ शांतिपूर्वक रहने के अवसर अत्यन्त कम हैं ।
>
> अधिनियम व्यापक रूप से पिता-माता को सम्मिलित करते हुए वरिष्ठ नागरिकों के भरणपोषण पर विचार करता है, यद्यपि इसमें एक पृथक् अध्याय (अध्याय-V) समाविष्ट है जो वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति के संरक्षण पर विचार करता है । वर्तमान मामला इसी अध्याय से संबंधित है । अधिनियम में परिभाषित 'कल्याण' एक व्यापक शब्द है जिसमें वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक समस्त सुविधाएं सम्मिलित हैं । उनको शारीरिक और चिकित्सीय सहायता के अतिरिक्त सम्यक् रूप से सम्मान और संवेदनशील सहारा को 'कल्याण' की परिभाषा से पृथक् नहीं किया जा सकता । किसी के लिए इस बात से अधिक निराशाजनक और दुखद बात और कुछ नहीं हो सकती जब उसके स्वयं के बच्चे उसके साथ उचित व्यवहार नहीं करते और वह भी 80 वर्ष की वृद्धावस्था वाली आयु में ।
>
> इसलिए, श्रीमती एस. के. सहीदुन निसा पुत्री श्री शेख खलील को एतद्द्वारा उसके पिता की दुकान और मकान को इस आदेश को जारी किए जाने की तारीख से 60 दिनों के भीतर रिक्त करने के लिए निर्देशित किया जाता है । बारातंग के थानाध्यक्ष को भी याची और उसकी पत्नी को उनके जीवन और सम्पत्ति को संरक्षित किए जाने के बाबत निर्देशित किया जाता है ।"

6. तारीख 14 जनवरी, 2016 के इस आदेश के विरुद्ध शेख खलील

और श्रीमती एस. के. समरूल निसा की पुत्री अर्थात् सुश्री सहीदुन निसा ने 2007 के उक्त अधिनियम के अन्तर्गत गठित अपीली अधिकरण के समक्ष कानूनी अपील फाइल की । अपीली अधिकरण ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए कि उसको वरिष्ठ नागरिक के घर से उसकी पुत्री को बेदखल करने की शक्ति प्राप्त नहीं है और उसको केवल अधिनियम और नियम के अनुसार भरणपोषण का आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त है, तारीख 17 जून, 2016 को आदेश पारित कर दिया जिसका सुसंगत भाग नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "तथापि, श्री शेख खलील ने तारीख 17 मई, 2016 के अपने प्रत्यावेदन में अभिकथित किया है और अधिकरण के समक्ष निवेदन भी किया है कि वह अपने बच्चों से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं चाहते अर्थात् वह उनसे किसी भी प्रकार का भरणपोषण नहीं चाहते ।
>
> अभिलेख पर उपलब्ध समस्त तथ्यों पर विचारोपरांत और अधिनियम और नियम के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकरण/अपीली अधिकरण को श्रीमती एस. के. सहीदुन निसा को मकान से निष्कासित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है । भरणपोषण अधिकरण का यह निर्देश अधिकारातीत है कि श्रीमती एस. के. सहीदुन निसा अपने पिता की दुकान और मकान को खाली करें ।
>
> भरणपोषण अधिकरण का यह आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । अपीली अधिकरण को भी श्रीमती एस. के. सहीदुन निसा को मकान से निष्कासित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है । इसलिए श्री शेख खलील के अनुरोध को अस्वीकार किया जाता है ।
>
> स्थानीय पुलिस थानाध्यक्ष को पिता-माता को शारीरिक रूप से सुरक्षा प्रदान किए जाने और इस संबंध में अधिकरण के समक्ष मासिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया जाता है ।
>
> तद्नुसार, अपील निस्तारित की जाती है ।"

7. अपीली अधिकरण के तारीख 17 जून, 2016 के आदेश के विरुद्ध सुश्री सहीदुन निसा के 80 वर्षीय पिता और 70 वर्षीय माता अर्थात् श्री शेख खलील और श्रीमती एस. के. कमरून ने रिट न्यायालय की शरण ली जिसने तारीख 17 अगस्त, 2016 का आक्षेपित निर्णय पारित किया जो प्रस्तुत अपील में चुनौती की विषयवस्तु है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने

मामले के समस्त पहलुओं पर विचार करते हुए दो विवाद्यक विरचित किए, जो इस प्रकार हैं :–

"(i) क्या प्रत्यर्थी प्राधिकारी 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम के अधीन याचियों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है ?

(ii) क्या निजी प्रत्यर्थी संख्या 5 को याचियों को उस मकान, जिसका निर्माण याचियों ने सरकारी भूमि पर किया और जिसमें याची स्वीकृत रूप से वर्ष 1959 से निवास कर रहे हैं, से निष्कासित करने का दबाव डालने का प्राधिकार प्राप्त हैं ?"

8. तत्पश्चात्, एक विस्तृत निर्णय पारित किया गया जिसके सुसंगत भाग को नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

"13. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचारोपरान्त और अभिलेख का परिशीलन किए जाने के पश्चात् और साथ ही श्री प्रशान्त द्वारा ऊपर उद्धृत किए गए विनिश्चयों पर विचारोपरान्त मैं अभिलेखों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि याची ने उक्त भवन का निर्माण सरकारी जमीन पर कराया था ।

अभिलेखों से यह भी स्पष्ट है कि तारीख 23 नवम्बर, 1990 को 1966 के अंडमान और निकोबार द्वीप समूह भू-अभिलेखों और भू-अभिलेख नियम की धारा 202 के अधीन प्रत्यर्थी-प्राधिकारी द्वारा याचियों को पूर्वोक्त भू-संपत्ति के संबंध में एक नोटिस जारी किया गया था ।

यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि याचियों ने प्रत्यर्थी संख्या 5 को उनकी दुकान की देखभाल करने की अनुज्ञा प्रदान की थी, चूंकि याची संख्या 1 प्रतिमाह एक हजार रुपए की पेंशन प्राप्त करते हैं । प्रत्यर्थी संख्या 5 ने याचियों की सहृद्यता का लाभ उठाकर उनको उनकी संपत्ति से निष्कासित करने का प्रयास किया जिसके विरुद्ध याचियों ने 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम के अधीन आवेदन फाइल करते हुए अधिकरण की शरण ली ।

दुर्भाग्यवश अपीली अधिकरण द्वारा वह आदेश तारीख 17 जून, 2016 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिकरण/अपीली अधिकरण को प्रत्यर्थी संख्या 5 को निष्कासित करने का कोई प्राधिकार प्राप्त नहीं है, द्वारा अपास्त कर दिया गया । तद्नुसार, अधिकरण का आदेश अपील प्राधिकारी द्वारा अपास्त कर दिया गया ।

14. इस प्रक्रम पर 2007 के उक्त अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (च), जो संपत्ति को परिभाषित करती है, पर विचार किया जाना लाभदायक होगा :–

> 'संपत्ति से किसी प्रकार की संपत्ति अभिप्रेत है, चाहे वह जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित, मूर्त या अमूर्त हो और जिसमें ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित सम्मिलित हैं ।'

2007 के अधिनियम में 'संपत्ति' की परिभाषा, जिसको ऊपर उद्धृत किया गया है, याचियों के दावे और दलीलों का पूर्णरूप से समर्थन करती है, विशेष रूप से संपत्ति में याची संख्या 1 के अधिकार का । प्रत्यर्थी संख्या 1 की दलील संपत्ति के संबंध में है । इस संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 1 की दलील स्पष्टतः भ्रांतिपूर्ण है ।

इसलिए, मेरे विचार में चूंकि याची लम्बे समय से वर्ष 1959 से संपत्ति का उपभोग कर रहे हैं, और वे निश्चित रूप से वृद्ध लोग हैं, वे 2007 के अधिनियम के अधीन उपबंधित संरक्षण के हकदार हैं ।

यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 तलाकशुदा या परित्यक्ता स्त्री नहीं है । प्रत्यर्थी संख्या 5 याचियों की संपत्ति अर्थात् दुकान को सम्मिलित करते हुए रिहायशी मकान का उपभोग अपने परिवार के सदस्यों के साथ कर रही है और वह उसके अधिभोग में है तद्द्वारा उसने याचियों को दयनीय स्थिति में पहुंचा दिया है जैसा कि इसमें के याचियों द्वारा प्रकथन किया गया है ।

15. तद्नुसार, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं और यह अभिनिर्धारित करता हूं कि अपीली प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है ।

16. परिणामस्वरूप, तारीख 17 जून, 2016 का आदेश अपास्त और अभिखंडित किया जाता है, तद्द्वारा, अपीली अधिकरण द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2016 को पारित आदेश की पुष्टि की जाती है ।

17. मैं प्रत्यर्थी संख्या 5 को निर्देशित करता हूं कि वह अपने पिता की दुकान और मकान को इस आदेश को संसूचित किए जाने की तारीख से 60 दिनों के भीतर खाली कर दे, जैसा कि विद्वान् अधिकरण द्वारा निर्देशित किया गया है ।

इस बात का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं है कि बारातंग के थानाध्यक्ष को भी याची संख्या 1 और उसकी पत्नी के जीवन और संपत्ति का संरक्षण सुनिश्चित करने और अधिकरणों के आदेश का अनुपालन करने के लिए निर्देशित किया जाता है ।

18. इन निर्देशों के साथ रिट याचिका लागत के संबंध में कोई आदेश पारित किए बिना निस्तारित की जाती है ।"

9. वर्तमान अपील में अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा जिस एकमात्र प्रश्न को उठाए जाने की ईप्सा की गई है, वह यह है कि क्या 2007 के उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कासन का कोई आदेश पारित किए जाने की गुंजाइश है, और वह भी उस संपत्ति से जिसका स्वामित्व निजी प्रत्यर्थियों को प्राप्त नहीं है ।

10. चूंकि मामले के तथ्यों को ऊपर अभिकथित किया जा चुका है, हमको अपीलार्थी द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ मात्र सुसंगत कानून की योजना पर विचार करने की आवश्यकता है ।

11. 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम एक केन्द्रीय कानून है जो संविधान के अन्तर्गत प्रत्याभूत और मान्यताप्राप्त पिता-माता और वरिष्ठ नागरिकों के भरणपोषण और कल्याण के लिए अधिक प्रभावी उपबंधों को उपबंधित करने के लिए और उनसे संबंधित या उनसे अनुशांगिक मामलों को उपबंधित करने के लिए बनाया गया ।

12. 2007 के उक्त आदेश के प्राख्यापन के पूर्व एक विधेयक तैयार किया गया था जिसको उद्देश्यों और कारणों के कथन के साथ संसद् के समक्ष प्रस्तुत किया गया था :–

"उद्देश्यों और कारणों के कथन

भारतीय समाज के परम्परागत मानदंड और मूल्य वयोवृद्ध लोगों की देखभाल का इंतजाम किए जाने पर जोर देते हैं । फिर भी संयुक्त परिवार प्रणाली के विखंडन के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में वयोवृद्ध लोगों की देखभाल उनके परिवारजनों द्वारा नहीं हो पा रही है । परिणामस्वरूप, अनेक वृद्ध, विशेष रूप से विधवा महिलाओं को उनके जीवन की सांध्य बेला को अकेले व्यतीत करने के लिए मजबूर किया जा रहा है और वे शारीरिक और वित्तीय सहायता की कमी में भावुकतापूर्ण उपेक्षा के शिकार बनने को विवश हैं । इससे स्पष्टतः, प्रकट होता है कि बुढ़ापा एक बड़ी सामाजिक चुनौती बन गया है और बुजुर्ग लोगों की देखभाल और संरक्षण पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है । यद्यपि माता-पिता 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन भरणपोषण का दावा कर सकते हैं, किन्तु फिर भी प्रक्रिया समय खपाने वाली है और साथ ही खर्चीली भी है । इसलिए, माता-पिता का भरणपोषण का दावा किए जाने के प्रयोजनार्थ उपबंधों के साधारण, मितव्ययी, गतिमान होने की आवश्यकता है ।

2. यह विधेयक उन लोगों पर बाध्यता अपने बुजुर्ग नातेदारों के भरणपोषण की बाध्यता अधिरोपित करता है जो अपने बुजुर्ग नातेदारों की संपत्ति विरासत में प्राप्त करते हैं और वृद्धाश्रम स्थापित किए जाने और साथ ही गरीब वृद्ध लोगों के भरणपोषण के लिए भी उपबंधित किए जाने के लिए प्रस्तावित करता है ।

इसके अतिरिक्त, यह विधेयक वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराए जाने और साथ ही उनके जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए उपबंधित किए जाने के लिए भी प्रस्तावित करता है ।

3. इसलिए, यह विधेयक यह उपबंधित किए जाने के लिए प्रस्तावित करता है कि ;

(क) माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों को भरणपोषण की आवश्यकता पर आधारित समुचित तंत्र स्थापित किया जाए ;

(ख) वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं ;

(ग) वृद्ध लोगों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए समुचित तंत्र का संस्थाकरण किया जाए ; और

(घ) प्रत्येक जिले में वृद्धाश्रम की स्थापना की जाए ।

4. यह विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को अभिप्राप्त करने की ईप्सा करता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

13. परिणामस्वरूप, विधेयक को संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की सहमति तारीख 29 दिसम्बर, 2007 को प्राप्त हो गई और यह विधेयक कानून की पुस्तक में 2007 के माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम के रूप में दर्ज हो गया । यह कानून अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में तारीख 21 मई, 2008 को प्रभाव में आया । इस कानून के उद्देश्यों और कारणों के कथन, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, अन्य बातों के साथ वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए समुचित तंत्र का संस्थाकरण किए जाने के लिए स्पष्टतः उपबंधित करते हैं (अधोरेखांकन हमारे द्वारा किया गया) । भरणपोषण अधिकरण के स्वरूप में यहीं वह तंत्र है जो बुजुर्ग दम्पत्ति एक 80 वर्ष के पुरुष और उसकी 70 वर्ष की पत्नी की दयनीय स्थिति पर मामले पर जमीनी जांच किए जाने के पश्चात् विचार करता है । यह तारीख 14 जनवरी, 2016 के आदेश से स्पष्ट है जिसमें भरणपोषण अधिकरण ने अन्य बातों के साथ इस सीमा तक मताभिव्यक्ति की कि बुजुर्ग दम्पत्ति अपनी विवाहित पुत्री के साथ प्रसन्न नहीं थे और उनके संबंध इस सीमा तक खराब हो चुके थे कि उनमें लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौच आरम्भ हो गया था और यहां तक कि अधिकरण के समक्ष भी हुआ । अधिकरण ने आगे मताभिव्यक्ति की कि पक्षों के मध्य समझौते और शांतिपूर्वक एक साथ रहने के अवसर अत्यन्त कम हैं । इन परिस्थितियों के अन्तर्गत अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मामला व्यापक रूप से 2007 के उक्त अधिनियम के अध्याय 7, जो वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण पर विचार करता है, के अन्तर्गत आता है । ऐसे ही अन्य कारणोंवश, जैसा कि अधिकरण ने श्रीमती सहीदुन निसा (इसमें कि अपीलार्थी) को उसके पिता की दुकान और मकान को आदेश के जारी किए जाने की तारीख से 60 दिनों के भीतर रिक्त किए जाने के लिए निर्देशित किया । बारातंग के थानाध्यक्ष को भी श्री शेख

खलील और श्रीमती एक. के. कमरून के जीवन और स्वातंत्र्य का संरक्षण सुनिश्चित किए जाने और आदेश का पालन सुनिश्चित कि जाने के लिए निर्देशित किया गया था ।

14. हमने, 2007 के अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का परिशीलन करते हुए अवेक्षित किया कि इस कानूनी की योजना यह सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है कि कोई वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन व्यतीत कर सके । वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन व्यतीत करने के प्रयोजनार्थ उनके "जीवन" और "संपत्ति" के संरक्षण की अपेक्षा करते हैं । उद्देश्यों और कारणों का कथन, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, स्पष्टतः वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के लिए उपयुक्त तंत्र के संस्थाकरण के लिए उपबंधित करता है शब्द "संपत्ति" को 2007 के अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (च) के अधीन कानूनी रूप से परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "संपत्ति से किसी प्रकार की संपत्ति अभिप्रेत है, चाहे वह जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित, मूर्त या अमूर्त हो और जिसमें ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित सम्मिलित हैं ।"

15. अतः यह देखा जाता है कि कानूनी परिभाषा "ऐसी संपत्तियों में अधिकार या हित" को अपनी परिधि के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है । इसलिए किसी वरिष्ठ नागरिक के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह ऐसी किसी संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में किसी कानून की योजना के अन्तर्गत संरक्षण की ईप्सा करे ।

16. 2007 के अधिनियम की धारा 22(2), जो अध्याय 5 के अन्तर्गत आती है, वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार द्वारा व्यापक कार्य योजना विहित किए जाने के बारे में उपबंधित करती है । 2007 के अधिनियम की योजना, जो अन्य बातों के साथ वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति के संरक्षण के बाबत उपबंधित करती हैं, कहीं पर भी विनिर्दिष्ट रूप से किसी ऐसी संपत्ति, जिसमें कोई बुजुर्ग संरक्षक या वरिष्ठ नागरिक कोई अधिकार या हित रखता है, के संबंध में किसी सक्षम अधिकरण द्वारा निष्कासन/रिक्ति का कोई आदेश पारित किए जाने से विवर्जित नहीं करती, यदि वह आदेश वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति, दोनों के संरक्षण के लिए पारित किया जाना अपेक्षित है । अतः, कानून इस प्रकार के किसी भी आदेश, जैसा कि

भरणपोषण अधिकरण द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2016 को पारित किया गया, की परिधि का सही-सही मूल्यांकन करते हुए जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक व्यापक है ।

17. इसके अलावा और किसी भी परिस्थिति में न्यायालय के समक्ष फाइल की गई परमादेश की अपील में सामान्यतः कोई मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं होता जब तक कि अत्यधिक स्पष्ट रूप से शिथिलताएं और अनियमितताएं दृश्यमान नहीं होती । 2017 की रिट याचिका संख्या 43 में तारीख 17 अगस्त, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को स्पाट रूप से पढ़े जाने पर ऐसी कोई स्पष्ट शिथिलता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती । जैसी की मताभिव्यक्ति पहले भी की गई है, आक्षेपित निर्णय और आदेश व्यापक हैं और तर्कपूर्ण कारणों के साथ पारित किया गया है ।

18. ऊपरवर्णित कारणोंवश हम, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2017 की रिट याचिका संख्या 43 में तारीख 17 अगस्त, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में मध्यक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते ।

19. अपील खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार, स्थगन आवेदन के साथ खारिज किया जाता है ।

न्यायमूर्ति डे – 20. मैं सहमत हूं ।

तत्पश्चात् :

इस निर्णय की घोषणा के तुरन्त पश्चात् अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने आदेश के क्रियान्वयन को स्थगित किए जाने की प्रार्थना की, जिस पर विचार किया गया और अस्वीकृत किया गया ।

रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

अवि.

विद्यावती देवी (श्रीमती)

बनाम

धनन्जय कुमार पांडेय

तारीख 22 नवंबर, 2016

न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पति द्वारा पत्नी पर क्रूरता बरतने का आरोप – पति द्वारा अर्जी में या अभिवचनों में पत्नी के विरुद्ध जारकर्म का कोई अभिवचन न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा जारकर्म का विवाद्यक विरचित किया जाना – पक्षकारों द्वारा जारकर्म के विवाद्यक के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना – न्यायालय द्वारा जारकर्म का आधार साबित मानते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जानी – ऐसे किसी निर्णय या डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता – मामले को प्रतिप्रेषित किया जाना उचित होगा ।

अपीलार्थी विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2016 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित हुई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटन के लिए फाइल किए गए वैवाहिक वाद को निचले न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया है । अतः अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर 5 विवाद्यक विरचित किए, जिनमें से एक यह है कि क्या प्रत्यर्थी जारकर्म में रह रही थी ? यह बात समझ में आने वाली नहीं है कि इन अभिवचनों के आधार पर यह विवाद्यक विरचित किया गया कि क्या प्रत्यर्थी जारकर्म में रह रही थी जबकि स्वयं अर्जीदार ने संपूर्ण अर्जी में प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारकर्म का कोई अभिकथन नहीं किया है और न ही उसने अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन वाद फाइल किया था । निचले न्यायालय के अभिलेख से न केवल इतना बल्कि यह भी प्रतीत होता है कि जब यह

विवाद्यक विरचित किया गया था तो अर्जीदार ने अनेक शब्दों में प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारकर्म का अभिकथन करते हुए अपना साक्ष्य पेश किया और उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा कि प्रत्यर्थी ने अन्य व्यक्तियों के साथ शारीरिक संबंध बनाने आरंभ कर दिए हैं और वह (पत्नी) जून, 2002 से जमशेदपुर शहर के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी रातें गुजार रही है । अर्जीदार की ओर से परीक्षा किए गए अन्य साक्षी ने भी अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसा ही कथन किया है । अर्जीदार की ओर से पेश किया गया साक्ष्य भी अभिवचनों के परे था । ऐसा प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने अपना निर्णय इन साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् पारित किया है और मुख्यतया मामले में विवाह-विच्छेद मंजूर करने के लिए पत्नी द्वारा जारकर्म करने का विवाद्यक आधार बन गया है । निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि यह साक्ष्य कि प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी, इस तथ्य से साबित है कि उसने जारकर्म में रहते हुए गर्भ धारण किया था । न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि क्रूरता से संबंधित विवाद्यक, इस मुददे पर साक्ष्य तथा निचले न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष पक्षकारों के अभिवचनों के पूर्णतया परे हैं । निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को कायम रखा जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और न ही ऐसे साक्ष्य को जो अभिवचनों के बिना पेश किया गया है, न्यायिक अभिलेख में बनाए रखना अनुज्ञात किया जा सकता है । इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में न्यायालय के पास इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं है कि न्यायालय निचले न्यायालय के निर्णय को अपास्त करे और निचले न्यायालय द्वारा बनाए गए विवाद्यकों को त्यक्त करे तथा निचले न्यायालय में पेश किए गए सम्पूर्ण साक्ष्य को त्यक्त करे तथा मामले को पक्षकारों के अभिवचनों के अनुसरण में विवाद्यक विरचित करने के लिए निचले न्यायालय को मामला प्रतिप्रेषित करे और इस बात के लिए अनुज्ञात करे कि पक्षकार, पक्षकारों के अभिवचनों के अनुसार नए सिरे से अपना साक्ष्य पेश करें । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि पक्षकारों द्वारा मामले में दिए गए अभिवचन बरकरार रहेंगे । तद्नुसार 2002 के वैवाहिक मामला सं. 136 में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । निचले न्यायालय में विरचित विवाद्यकों और दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को भी त्यक्त किया जाता है और मामला ऊपर निदेशित रूप में विधि के अनुसार नए सिरे से विनिश्चित करने के लिए निचले न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है । (पैरा 4, 5, 6, 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 101.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री महैश तिवारी और मोहम्मद शहाबुद्दीन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री शफीक रहमान और राजीव कुमार

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक ने दिया ।

निर्णय – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

2. अपीलार्थी विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2016 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित हुई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटन के लिए फाइल किए गए वैवाहिक वाद को निचले न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया है ।

3. अपीलाधीन निर्णय और पक्षकारों के अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् हमें यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा धारा 13(1)(i-क) के अधीन अर्जी क्रूरता के एकमात्र आधार पर फाइल की गई थी । अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध जारकर्म में रहने का कोई अभिकथन नहीं किया गया था और न ही अर्जी अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन फाइल की गई थी । अर्जी में केवल यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी, अर्जीदार के द्वारा संतान उत्पन्न करने में सहायता नहीं करती है और उसने अर्जीदार के द्वारा संतान उत्पन्न करने से इनकार कर दिया है । उसने अर्जीदार से यह इच्छा व्यक्त की कि वह किसी अन्य व्यक्ति से संतान उत्पन्न करेगी या ट्यूब बेबी द्वारा संतान उत्पन्न करेगी । अर्जी में यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी अजीदार के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने में सहायता नहीं करती है और उसका यह व्यवहार प्रत्यर्थी द्वारा अर्जीदार के साथ क्रूरता बरतने के बराबर है । प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में इस अभिकथन से इनकार किया गया और यह भी अभिकथन किया गया कि चूंकि उसके विवाह के लगभग 2 वर्ष से अधिक की अवधि

के पश्चात् भी कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई इसलिए अर्जीदार प्रत्यर्थी की सलाह पर जमशेद पुर के डा. चावला के पास उपचार के लिए गया था और डा. चावला ने दोनों की जांच करने के पश्चात् यह पाया कि प्रत्यर्थी बच्चा उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त है तथापि, अर्जीदार संतान उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था और इसलिए चिकित्सक द्वारा अर्जीदार का चिकित्सीय उपचार किया गया था । यह भी कथन किया गया कि एक बार प्रत्यर्थी गर्भवती हुई थी तथापि, लगभग 2 मास के पश्चात् उसका गर्भपात हो गया था ।

4. निचले न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर 5 विवाद्यक विरचित किए, जिनमें से एक यह है कि क्या प्रत्यर्थी जारकर्म में रह रही थी ? यह बात समझ में आने वाली नहीं है कि इन अभिवचनों के आधार पर यह विवाद्यक विरचित किया गया कि क्या प्रत्यर्थी जारकर्म में रह रही थी, जबकि स्वयं अर्जीदार ने संपूर्ण अर्जी में प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारकर्म का कोई अभिकथन नहीं किया है और न ही उसने अधिनियम की धारा 13(1) (i-क) के अधीन वाद फाइल किया था ।

5. निचले न्यायालय के अभिलेख से न केवल इतना बल्कि यह भी प्रतीत होता है कि जब यह विवाद्यक विरचित किया गया था तो अर्जीदार ने अनेक शब्दों में प्रत्यर्थी के विरुद्ध जारकर्म का अभिकथन करते हुए अपना साक्ष्य पेश किया और उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा कि प्रत्यर्थी ने अन्य व्यक्तियों के साथ शारीरिक संबंध बनाने आरंभ कर दिए हैं और वह (पत्नी) जून, 2002 से जमशेदपुर शहर के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी रातें गुजार रही है । अर्जीदार की ओर से परीक्षा किए गए अन्य साक्षी ने भी अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसा ही कथन किया है । अर्जीदार की ओर से पेश किया गया साक्ष्य भी अभिवचनों के परे था । ऐसा प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने अपना निर्णय इन साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् पारित किया है और मुख्यतया मामले में विवाह-विच्छेद मंजूर करने के लिए पत्नी द्वारा जारकर्म करने का विवाद्यक आधार बन गया है । निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह साक्ष्य कि प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी, इस तथ्य से साबित है कि उसने जारकर्म में रहते हुए गर्भ धारण किया था ।

6. हमें यह प्रतीत होता है कि क्रूरता से संबंधित विवाद्यक, इस मुद्दे पर साक्ष्य तथा निचले न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष पक्षकारों के

अभिवचनों के पूर्णतया परे हैं । निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को कायम रखा जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और न ही ऐसे साक्ष्य को जो अभिवचनों के बिना पेश किया गया है, न्यायिक अभिलेख में बनाए रखना अनुज्ञात किया जा सकता है ।

7. इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में हमारे पास इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं है कि हम निचले न्यायालय के निर्णय को अपास्त करें और निचले न्यायालय द्वारा बनाए गए विवाद्यकों को त्यक्त करें तथा निचले न्यायालय में पेश किए गए सम्पूर्ण साक्ष्य को त्यक्त करें तथा मामले को पक्षकारों के अभिवचनों के अनुसरण में विवाद्यक विरचित करने के लिए निचले न्यायालय को मामला प्रतिप्रेषित करें और इस बात के लिए अनुज्ञात करें कि पक्षकार, पक्षकारों के अभिवचनों के अनुसार नए सिरे से अपना साक्ष्य पेश करें । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि पक्षकारों द्वारा मामले में दिए गए अभिवचन बरकरार रहेंगे ।

8. तद्नुसार 2002 के वैवाहिक मामला सं. 136 में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । निचले न्यायालय में विरचित विवाद्यकों और दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को भी त्यक्त किया जाता है और मामला ऊपर निदेशित रूप में विधि के अनुसार नए सिरे से विनिश्चित करने के लिए निचले न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है ।

9. चूंकि मामला काफी पुराना है इसलिए निचला न्यायालय, अभिलेख प्राप्त होने की तारीख से निश्चित रूप से 6 मास की अवधि के भीतर विवाद्यक विरचित करने, साक्षियों की परीक्षा करने और मामले को विनिश्चित करने का पूरा प्रयास करेगा ।

10. तद्नुसार अपील ऊपर उल्लिखित निदेशों के अनुसार निपटाई जाती है । निचले न्यायालय का अभिलेख इस आदेश की प्रति के साथ तुरन्त वापस भेजा जाए ।

अपील में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

मृत्युंजय चक्रवर्ती

बनाम

शीला चक्रवर्ती

तारीख 28 फरवरी, 2017

न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन – पति द्वारा शहर में नियोजित होने के कारण पत्नी को अपने माता-पिता के गांव अर्थात् ससुराल के मकान में रहने के लिए मजबूर किया जाना – पत्नी द्वारा बेहतर जीवन जीने के लिए पति के साथ रहने के लिए बल देना – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता का अभिवाक् – अपने पति के साथ रहने के लिए बल देना क्रूरता गठित नहीं करता – अतः विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है ।

अपीलार्थी विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, दुमका द्वारा 2004 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) वाद सं. 30 में तारीख 25 जून, 2007 को पारित उस निर्णय डिक्री से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा आवेदक-अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन पक्षकारों के बीच विवाह के विघटन के लिए और विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए फाइल किए गए आवेदन को विरोध के आधार पर खारिज किया गया है । अतः आवेदक अपीलार्थी द्वारा वर्तमान प्रथम अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आक्षेपित निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि निचले न्यायालय ने दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की विस्तार से चर्चा की है जिसमें निचले न्यायालय में आवेदक-अपीलार्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने आवेदक के पक्षकथन का समर्थन किया है जबकि प्रत्यर्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने प्रत्यर्थी के पक्षकथन का समर्थन किया है । निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि स्वयं आवेदक द्वारा क्रूरता बरतने के कारण परित्यजन किया गया है और इसलिए निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर यह पाया कि

अपीलार्थी-पति द्वारा प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे प्रताड़ित किया गया था और तद्नुसार निचले न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया था । दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का गहराई से परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान मामले में क्रूरता के जैसा कि पति द्वारा अभिकथित किया गया है, संबंध में केवल ऐसे दृष्टांत हैं जिनमें पत्नी ने पति के साथ रहने के लिए बल दिया था और वह एक बेहतर जीवन जीना चाहती थी । पत्नी के विरुद्ध क्रूरता के अभिकथन के सिवाय अन्य कोई अभिकथन नहीं किया गया है । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि आवेदक-अपीलार्थी के स्वीकृत पक्षकथन को दृष्टिगत करते हुए सम्पूर्ण मामले में ऐसा कोई दृष्टांत नहीं है जो प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध ऐसी क्रूरता का मामला बना सके जिससे पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार बने । न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य की सतर्कतापूर्वक परीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला है कि पत्नी के साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे प्रताड़ित किया गया था और इसलिए निचले न्यायालय ने वाद खारिज किया था । तद्नुसार न्यायालय को विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, दुमका द्वारा 2004 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) वाद सं. 30 में तारीख 25 जून, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 7, 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की प्रथम अपील सं. 104.

मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, दुमका द्वारा 2004 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) वाद सं. 30 में तारीख 25 जून, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री इन्द्रजीत सिन्हा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पी. ए. एस. पाती

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक ने दिया ।

निर्णय – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

2. अपीलार्थी विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, दुमका द्वारा 2004 के वैवाहिक (विवाह- विच्छेद) वाद सं. 30 में तारीख 25 जून, 2007

को पारित उस निर्णय डिक्री से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा आवेदक-अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन पक्षकारों के बीच विवाह के विघटन के लिए और विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए फाइल किए गए आवेदन को विरोध के आधार पर खारिज किया गया है ।

3. प्रारंभतः यह उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय में इस अपील के लंबन के दौरान हमने झारखंड राज्य विधिक सेवा, रांची के एक प्रशिक्षित मध्यस्थ द्वारा पक्षकारों के बीच समझौते कराने के लिए कार्रवाई की, तथापि, मध्यस्थता विफल हो गई क्योंकि दोनों में से एक पक्षकार मध्यस्थता के लिए उपस्थित नहीं हुआ । इसके पश्चात् भी दोनों पक्षकारों ने न्यायालय के बाहर विवाद को सुलझाने का प्रयत्न किया किन्तु समझौता नहीं हो सका और इसलिए मामले को गुण-दोष के आधार पर सुना गया ।

4. आवेदक-अपीलार्थी के पक्षकथनानुसार पक्षकारों के बीच विवाह हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार वर्ष 2004 में संपन्न हुआ था और विवाह के पश्चात् वे पति-पत्नी के रूप में साथ रहने लगे थे । पति रांची स्थित एक कंपनी में नियोजित था और उसे 2,000/- रुपए प्रतिमास वेतन मिलता था और वह अपने बड़े भाई के कुटुंब के साथ रहता था और वह अपनी पत्नी को अपने माता-पिता के साथ गांव के मकान में रखता था जहां वह समय-समय पर आता जाता रहता था । उनके विवाह से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था । तथापि, आवेदक-अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसकी पत्नी का व्यवहार उसके साथ अच्छा नहीं था और वह आवेदक के साथ रांची में रहने के लिए जोर देती थी। उसे पति के साथ बड़े भाई के मकान में रहने के लिए रांची भी लाया गया था तथापि, उसे आवेदक-अपीलार्थी के बूढ़े माता-पिता की देखभाल करने के लिए गांव के मकान में वापस भेज दिया गया था । यह इंतजाम पत्नी को पसन्द नहीं आया था और इसलिए वह अक्सर आवेदक के साथ रहने के लिए ज़ोर देती थी । आवेदक-अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि जब उसकी पत्नी गर्भवती हो गई तो वह अपने माता-पिता के मकान पर चली गई और लौट कर वापस नहीं आई । यह अभिकथित किया गया है कि यहां से क्रूरता आरंभ हुई । यह भी कहा गया है कि पत्नी ने पति के विरुद्ध एक दांडिक मामला भी दर्ज कराया था जिसमें पुलिस ने पति को बुलाया था और मामले में समझौता करा दिया गया था और यह विनिश्चय किया गया था कि आवेदक-अपीलार्थी अपनी पत्नी को साथ रखेगा जिसके लिए एक कागज भी तैयार किया गया था । इसके पश्चात् आवेदक अपनी पत्नी को

गांव के अपने मकान पर ले आया जहां वह केवल दो तीन दिन रही और तारीख 27 फरवरी, 2002 को किसी युक्तियुक्त कारण के बिना अपने पिता के मकान पर वापस चली गई । उसने अपने पति के विरुद्ध पुनः भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 379 और 498क के अधीन अपराधों के लिए 2003 का पी. सी. आर. दांडिक मामला सं. 122 दर्ज कराया था जिसमें पति लगभग 7 दिनों तक न्यायिक अभिरक्षा में रहा था तथापि, उसे समझौते के पश्चात् रिहा कर दिया गया था । आवेदक-अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि जब भी पत्नी आवेदक के साथ रहती थी, वह आवेदक से अधिक धन की प्रत्याशा करती थी, हर हफ्ते सिनेमा दिखाने के लिए कहती थी, बार-बार होटल में रात्रिभोज कराने के लिए कहती थी तथा ऐसी मंहगी चीजें खरीदने के लिए कहती थी, जो मांगे पूरी नहीं की जा सकती थीं और यह भी अभिकथित किया गया है कि इन मांगों से भी आवेदक-अपीलार्थी के साथ क्रूरता बरती गई । आवेदक-अपीलार्थी द्वारा इन अभिकथनों के साथ निचले न्यायालय में वाद फाइल किया गया था ।

5. सूचना जारी किए जाने पर प्रत्यर्थी निचले न्यायालय में उपस्थित हुई थी और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया था जिसमें उसने उपर्युक्त अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी का यह पक्षकथन है कि वह अपने पति के साथ रहने और अपने दाम्पत्य जीवन को आगे बढ़ाने के लिए सदैव ही इच्छुक थी । प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार उसकी ससुराल में उसके साथ क्रूरता बरती गई थी क्योंकि उससे विवाह के समय 1,50,000/- रुपए दहेज की मांग की गई थी किन्तु उसके पिता ने केवल 1,00,000/- रुपए नगद देने का इंतजाम किया था और इसलिए दहेज की मांग को लेकर क्रूरता बरती जा रही थी और उसे प्रताड़ित किया जा रहा था । यह भी अभिकथित किया गया है कि रांची में भी जब वह अपने पति के बड़े भाई के घर रह रही थी तो उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और दहेज की मांग को लेकर उसे प्रताड़ित किया गया था और उसका पति शराब पीकर मारता-पीटता था और गंदी-गंदी गालियां देता था और उसे पूरा खाना नहीं दिया जाता था और उसकी रोजाना की जरूरतें पूरी नहीं की जाती थीं और इसलिए उसे उसके बड़े भाई ने उसे उसके मायके पहुंचा दिया । जब वह गर्भवती हो गई तो उसे वापस गांव ले जाया गया और पुनः उसके साथ क्रूरता बरती गई और प्रताड़ित किया गया और उसका इलाज भी नहीं कराया गया जिस पर उसके पिता उसे अपने मकान पर वापस ले गए जहां उसने नर्सिंग होम में एक बच्चे को जन्म दिया था और उसका पति बच्चे को देखने नहीं आया । यह भी अभिकथित किया गया है कि जब वह अपनी ससुराल में

रह रही थी तो उस पर हमला किया गया था और उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उसकी हत्या करने का प्रयास किया गया था तथापि, शोर मचाने पर उसे बचा लिया गया था और उसके पश्चात् उसे उसके बच्चे के साथ उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था जिसके बारे में उसने कुंडाहिट पुलिस थाने में 2003 का मामला सं. 22 फाइल किया था । इन प्रकथनों के साथ निचले न्यायालय में लिखित कथन फाइल किया गया था ।

6. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा विवाद्यक विरचित किए गए थे जो क्रूरता और परित्यजन से संबंधित थे । आवेदक-अपीलार्थी ने निचले न्यायालय में स्वयं और अपने बड़े भाई सहित तीन साक्षियों की परीक्षा कराई तथा उसने 2004 के पी. सी. आर. मामला सं. 110 के आदेश-पत्रक को साबित किया । प्रत्यर्थी ने स्वयं सहित तीन साक्षियों की परीक्षा कराई जिनमें उसके पिता और उसकी ससुराल का एक ग्रामवासी सम्मिलित है । उसने भी 2004 के पी. सी. आर. मामला सं. 110 से संबंधित दस्तावेजों को साबित किया है जिन्हें शृंखला प्रदर्श-क के रूप में चिह्नांकित किया गया । यह बताया गया है कि 2003 के कुंडाहिट पुलिस थाना मामला सं. 22 या 2003 के पी. सी. आर. मामला सं. 122 से संबंधित दस्तावेजों को किसी भी पक्षकार द्वारा साबित नहीं किया गया है ।

7. आक्षेपित निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि निचले न्यायालय ने दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की विस्तार से चर्चा की है जिसमें निचले न्यायालय में आवेदक-अपीलार्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने आवेदक के पक्षकथन का समर्थन किया है जबकि प्रत्यर्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने प्रत्यर्थी के पक्षकथन का समर्थन किया है । निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि स्वयं आवेदक द्वारा क्रूरता बरतने के कारण परित्यजन किया गया है और इसलिए निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर यह पाया कि अपीलार्थी-पति द्वारा प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे प्रताड़ित किया गया था और तद्नुसार निचले न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया था ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि निचले न्यायालय द्वारा अपीलार्थी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का ठीक प्रकार से मूल्यांकन नहीं किया गया है और इसके प्रतिकूल निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का

एकपक्षीय रूप से अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे प्रताड़ित किया गया था । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी ने अपने पक्षकथन को साबित कर दिया था और यह एक ऐसा उचित मामला है जिसमें पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित किया जाना चाहिए ।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य की सहायता से अपना यह पक्षकथन साबित कर दिया है कि उसके साथ ससुराल वालों ने क्रूरता बरती थी और उसे प्रताड़ित किया गया था और इसलिए तद्नुसार यह दलील दी गई है कि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है ।

10. दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का गहराई से परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में क्रूरता के जैसा कि पति द्वारा अभिकथित किया गया है, संबंध में केवल ऐसे दृष्टांत हैं जिनमें पत्नी ने पति के साथ रहने के लिए बल दिया था और वह एक बेहतर जीवन जीना चाहती थी । पत्नी के विरुद्ध क्रूरता के अभिकथन के सिवाय अन्य कोई अभिकथन नहीं किया गया है । हमारा यह सुविचारित मत है कि आवेदक-अपीलार्थी के स्वीकृत पक्षकथन दृष्टिगत करते हुए सम्पूर्ण मामले में ऐसा कोई दृष्टांत नहीं है जो प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध ऐसी क्रूरता का मामला बना सके जिससे पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार बने । हमें यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य की सतर्कतापूर्वक परीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला है कि पत्नी के साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे प्रताड़ित किया गया था और इसलिए निचले न्यायालय ने वाद खारिज किया था ।

11. तद्नुसार हमें विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, दुमका द्वारा 2004 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) वाद सं. 30 में तारीख 25 जून, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है ।

12. इस अपील में कोई बल नहीं है और इसलिए तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

अमरजीत सिंह और एक अन्य

बनाम

सुरिन्दर सिंह अरोड़ा और एक अन्य

तारीख 2 फरवरी, 2017

न्यायमूर्ति जयन्त नाथ

भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (1899 का 2) – धारा 33 – याची द्वारा साक्ष्य में मूल दस्तावेज पेश न करके द्वितीयक साक्ष्य के रूप में फोटो प्रतियां पेश की जानी – दस्तावेजों की ग्राह्यता के संबंध में आक्षेप – न्यायालय द्वारा आक्षेप का वाद के अंतिम निपटान के समय न्यायनिर्णयन किए जाने हेतु स्थगन – न्यायालय का वाद के अंतिम निपटान के समय आवेदन पर न्यायनिर्णयन स्थगित करना न्यायोचित नहीं है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 63 और 65 – द्वितीयक साक्ष्य – दस्तावेज की फोटो प्रति – ग्राह्यता – पक्षकार द्वारा मूल दस्तावेज को खोने का अभिकथन किया जाना – तथ्यात्मक आधार के बिना द्वितीयक साक्ष्य अग्राह्य है ।

2017 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 124 और 2017 की सी. एम. सं. 4046 रोक आदेश के लिए फाइल की गई हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई वर्तमान रिट याचिकाओं में याचियों ने तारीख 8 दिसंबर, 2016 के आदेश को अपास्त करने का अनुरोध किया है जिसके द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के अधीन फाइल किए गए उनके आवेदन को वाद के अंतिम निपटान के प्रक्रम तक न्यायनिर्णीत करने के लिए स्थगित किया गया है । याची ने उक्त आदेश से व्यथित होकर यह प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचियों द्वारा वर्तमान आवेदन भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन फाइल किया गया है । वाद का मुख्य आधार दस्तावेज अर्थात् विक्रय करार और रसीद है जिन्हें क्रमशः कागज अंकन 28 और अंकन 27 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । वर्तमान आवेदन द्वारा यह कहा गया है कि इन दोनों दस्तावेजों

की मूल प्रतियां खो गई हैं । अतः याचियों को द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । यह भी कहा गया है कि चूंकि प्रत्यर्थियों द्वारा यह आक्षेप किया गया है कि उक्त दस्तावेज गैर-स्टाम्पित और अरजिस्ट्रीकृत हैं और मूल दस्तावेजों की केवल फोटो प्रतियां पेश की गई हैं इसलिए यह दलील दी गई है कि याचियों को भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के अधीन आवश्यक स्टाम्प शुल्क और शास्ति का संदाय करने तथा साक्ष्य अधिनियमम की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा वाद के अंतिम निपटान के प्रक्रम तक इस आवेदन पर अपने विनिश्चय को स्थगित रखा है । इस न्यायालय द्वारा सुस्थापित उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय ने आवेदन के न्यायनिर्णयन को वाद के अंतिम निपटान के साथ स्थगन करने में तात्विक त्रुटि की है । तद्नुसार न्यायालय तारीख 8 दिसंबर, 2016 के आदेश को अभिखंडित करता है । विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह याचियों द्वारा फाइल किए गए उक्त आवेदन का इसी प्रक्रम पर न्यायनिर्णयन करे । (पैरा 4, 5 और 10)

जहां तक याचियों द्वारा अपने आवेदन में ईप्सित अन्य निदेश का संबंध है अर्थात् जहां तक द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति देने का संबंध है, इस संबंध में विधिक स्थिति अब अनिर्णीत नहीं रही है । वर्तमान मामले में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने का याची का अनुरोध मौजूद नहीं है । याची इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह ऊपर अधिकथित विधि के अनुसार अपना द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए कार्रवाई करे । उपर्युक्त निदेशों के साथ वर्तमान याचिका और सभी लंबित आवेदन मंजूर किए जाते हैं । (पैरा 11, 14 और 15)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 789, तारीख 24 अगस्त, 2016 को विनिश्चित : **पवन कटारिया** बनाम **हरदीप कुमार बट्टा और एक अन्य** ;	12
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415 = (2013) 2 एस. सी. सी. 114 : **यू. श्री** बनाम **यू. श्री निवास** ;	13

[2011]	ए. आई. आर 2011 एस. सी. 1492 : **एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **ए. रामालिंगम** ;	13
[2002]	(2002) 96 डी. एल. टी. 131 : **श्रीमती शैल कुमारी** बनाम **श्रीमती सरस्वती देवी** ;	7, 8
[2000]	ए. आई. आर. 2000 दिल्ली 300 : **सुन्दर बाला और एक अन्य** बनाम **मैसर्स संदीप फोम इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** ।	9

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2017 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 124 और 4046-4047.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिकाएं ।

याचियों की ओर से श्री राजीव बहल और श्री एस. पी. श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एस. सी. सिंघल

न्यायमूर्ति जयन्त नाथ – 2017 की सी. एम. सं. 4047 (मुक्ति आवेदन) सभी न्यायोचित अपवादों के अध्यधीन मंजूर की जाती है । 2017 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 124 और 2017 की सी. एम. सं. 4046 रोक आदेश के लिए फाइल की गई हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई वर्तमान रिट याचिकाओं में याचियों ने तारीख 8 दिसंबर, 2016 के आदेश को अपास्त करने का अनुरोध किया है जिसके द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के अधीन फाइल किए गए उनके आवेदन को वाद के अंतिम निपटान के प्रक्रम तक न्यायनिर्णीत करने के लिए स्थगित किया गया है ।

2. संविवाद दो भाइयों के बीच विकासपुरी, दिल्ली स्थित एक संपत्ति के संबंध में है ।

3. याचियों ने डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपना साक्ष्य पेश किया है । तथापि, दो दस्तावेजों को अर्थात् रसीद और विक्रय करार को जिन्हें साक्ष्य के रूप में पेश किए गए शपथपत्र-साक्ष्य में आर. डब्ल्यू. 1/2 और 1/3 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, प्रदर्शों के रूप में स्वीकार नहीं किया गया

है और स्थानीय आयुक्त द्वारा इन्हें अपने तारीख 4 जनवरी, 2016 के आदेश में कागज अंकन 27 और 28 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । याचियों ने तारीख 18 मई, 2016 को भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के अधीन फाइल अपने आवेदन में संबंधित न्यायालय के आदेशों के अध्यधीन अपने साक्षी डी. डब्ल्यू. 1 को प्रतिपरीक्षा के लिए पेश किया और द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन दिया ।

4. याचियों द्वारा वर्तमान आवेदन भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन फाइल किया गया है । वाद का मुख्य आधार दस्तावेज अर्थात् विक्रय करार और रसीद है जिन्हें क्रमशः कागज अंकन 28 और अंकन 27 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । वर्तमान आवेदन द्वारा यह कहा गया है कि इन दोनों दस्तावेजों की मूल प्रतियां खो गई हैं । अतः याचियों को द्वितीय साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । यह भी कहा गया है कि चूंकि प्रत्यर्थियों द्वारा यह आक्षेप किया गया है कि उक्त दस्तावेज गैर-स्टाम्पित और अरजिस्ट्रीकृत हैं और मूल दस्तावेजों की केवल फोटो प्रतियां पेश की गई हैं इसलिए यह अनुरोध किया गया है कि याचियों को भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के अधीन आवश्यक स्टाम्प शुल्क और शास्ति का संदाय करने तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाए ।

5. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा वाद के अंतिम निपटान के प्रक्रम तक इस आवेदन पर अपने विनिश्चय को स्थगित रखा है ।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

7. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देने के लिए इस न्यायालय द्वारा **श्रीमती शैल कुमारी** बनाम **श्रीमती सरस्वती देवी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है कि इस न्यायालय द्वारा स्थापित विधिक स्थिति यह है कि दस्तावेजों की ग्राह्यता और सबूत की रीति के संबंध में किए गए आक्षेपों का आरंभिक प्रक्रम पर विनिश्चय किया जाना चाहिए न कि उन्हें स्थगित किया जाना चाहिए ।

8. इस संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा **श्रीमती शैल कुमारी** (पूर्वोक्त)

---

[1] (2002) 96 डी. एल. टी. 131.

वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश किया जा सकता है । उक्त निर्णय का सुसंगत पैरा 23 इस प्रकार है :–

"23. दस्तावेज की ग्राह्यता का प्रश्न उस प्रक्रम पर विनिश्चित किया जाएगा जब दस्तावेज औपचारिक रूप से साक्ष्य में पेश किया गया और साबित किया गया हो । दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न पर विनिश्चय को स्थगित करने और इसे साक्ष्य के भाग के रूप में चिह्नांकित करने को स्थगित करने से अनेक मामलों में कठिनाई उत्पन्न होगी और उस पक्षकार के साथ गंभीर अन्याय होगा जिसने इसे दाखिल किया है । यदि दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न और इस पर साक्ष्य के भाग के रूप के चिह्नांकित करने से कठिनाई उत्पन्न होती है तो अनेक मामलों में दस्तावेज पेश करने वाले पक्षकार के साथ अन्याय हो सकता है । यदि दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न को किसी मामले में अंतिम बहस की सुनवाई के समय के लिए स्थगित किया जाता है तो पक्षकार त्रुटि को दूर करने या कमी को पूरा करने के अवसर से वंचित हो सकता है । इसी कारण से उच्च न्यायालय नियम और आदेश जिनकी ऊपर चर्चा की गई है, दस्तावेज की ग्राह्यता और सबूत की रीति के संबंध में किए गए आक्षेपों पर तुरन्त निपटान पर बल देते हैं । यदि बहस की तारीख तक और वाद के निपटान के लिए अंतिम सुनवाई तक इनका विनिश्चय नहीं किया जाता है तो कतिपय मामलों में गंभीर अन्याय हो सकता है । दस्तावेज की ग्राह्यता और सबूत की रीति के संबंध में आक्षेप को सामान्यतया लंबित नहीं रखना चाहिए और उसका तुरन्त विनिश्चय किया जाना चाहिए जब वे उठाए जाते हैं विशेषतया यदि ऐसे किसी साक्षी के जिसे साबित करने के लिए बुलाया गया है, साक्ष्य को अभिलिखित करने के दौरान ऐसा आक्षेप उठाया गया है । तथापि, आक्षेप का निश्चित रूप से अंतिम सुनवाई के लिए नियत तारीख से पूर्व ही निपटान किया जाना चाहिए । इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत का इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा सुन्दर बाला और एक अन्य **बनाम** संदीप फोम इंडस्ट्रीज, ए. आई. आर. 2000 दिल्ली 300 वाले मामले के निर्णय में अभिव्यक्त मत से समर्थन मिलता है ।

इस निर्णय को पूरा करने से पूर्व हम यह संप्रेक्षण करना चाहेंगे कि जब अपीलार्थियों ने यह प्रमाणित करने के लिए कि तारीख 13 दिसंबर, 1993 को डाक रसीद सं. 4564 द्वारा पत्र भेजा गया था,

तारीख 23 मार्च, 1994 का डाक कार्यालय के प्रमाणपत्र सं. 3/68/9364 की द्वितीय प्रति जिसे पी. डब्ल्यू. 1/9 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और जो वापस न होकर सम्यक्तः परिदत्त की गई थी, साबित करने की इच्छा व्यक्त की तो प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा सबूत की रीति पर आक्षेप किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेप का तुरन्त विनिश्चय नहीं किया गया था । न्यायालय को ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों के सबूत के संबंध में आक्षेप पर अपना विनिश्चय लंबित नहीं रखना चाहिए था । यदि विचारण न्यायालय द्वारा कार्यवाहियों के आरंभिक प्रक्रम पर आक्षेप को विनिश्चित कर दिया जाता तो वादी-अपीलार्थी विधि के अनुसार उक्त दस्तावेज को साबित करने के लिए उचित उपायों का आश्रय ले सकता था । अपीलार्थियों से यह भी नहीं पूछा गया कि क्या सबूत के संबंध में आक्षेप का पहले विनिश्चय कर दिया जाए या नहीं । आक्षेप को लंबित रखना और उसे अंतिम निर्णय देने के समय विनिश्चित करना सही नहीं था । इस प्रकार की परिपाटी को त्यक्त किया जाना चाहिए ।"

9. समान रूप में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **सुन्दर बाला और एक अन्य** बनाम **मैसर्स संदीप फोम इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"17. निर्णय पूरा करने से पूर्व हम यह संप्रेक्षण करना चाहेंगे कि जब अपीलार्थियों ने यह प्रमाणित करने के लिए कि उन्होंने 13 दिसंबर, 1993 की डाक रसीद सं. 4564 द्वारा एक पत्र भेजा था जो वापस न होकर सम्यक्तः परिदत्त हुआ था, तारीख 23 मार्च, 1994 के डाक कार्यालय प्रमाणपत्र सं. 3/68/9394 की द्वितीय प्रति को जिसे पी. डब्ल्यू. 1/9 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, साबित करने की इच्छा की व्यक्त की तो प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के काउंसेल द्वारा सबूत के ढंग और रीति के बारे में आक्षेप किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेप का तुरन्त विनिश्चय नहीं किया गया । ऐसे महत्वपूर्ण दस्तोवजों के सबूत के संबंध में आक्षेप लंबित नहीं रखा जाना चाहिए । यदि विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेप का कार्यवाहियों के सही प्रक्रम पर विनिश्चय कर दिया जाता तो वादी-अपीलार्थी विधि

[1] ए. आई. आर. 2000 दिल्ली 300.

के अनुसार उक्त दस्तावेज को साबित करने के लिए उचित उपायों का आश्रय ले सकता था । अपीलार्थियों से यह भी नहीं पूछा गया कि क्या सबूत के संबंध में आक्षेप का विनिश्चय पहले कर दिया जाए । निर्णय के परिदान के समय तक आक्षेपों को लंबित रखना और इसके विनिश्चय को लंबित रखना सही नहीं था । ऐसी किसी परिपाटी को त्यक्त किया जाना चाहिए ।"

10. इस न्यायालय द्वारा सुस्थापित उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय ने आवेदन के न्यायनिर्णयन को वाद के अंतिम निपटान के साथ स्थगन करने में तात्विक त्रुटि की है । तद्नुसार मैं तारीख 8 दिसंबर, 2016 के आदेश को अभिखंडित करता हूं । विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह याचियों द्वारा फाइल किए गए उक्त आवेदन का इसी प्रक्रम पर न्यायनिर्णयन करे ।

11. जहां तक याचियों द्वारा अपने आवेदन में ईप्सित अन्य निदेश का संबंध है अर्थात् जहां तक द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति देने का संबंध है, इस संबंध में विधिक स्थिति अब अनिर्णीत नहीं रही है ।

12. इस न्यायालय ने **पवन कटारिया** बनाम **हरदीप कुमार बट्टा और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए अपने आदेश में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :—

"11. अतः जहां मूल दस्तावेज पेश नहीं किए गए हैं वहां साक्ष्य पेश किए जाने के समय द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए तथ्यात्मक आधार का उल्लेख किया गया है । किसी तथ्यात्मक आधार के अभाव में द्वितीयक साक्ष्य अग्राह्य होगा । न्यायालय इस बात के लिए आबद्ध है कि वह अपने समक्ष पेश किए गए दस्तावेज पर पृष्ठांकन करने के पूर्व द्वितीयक साक्ष्य के रूप में दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न को विनिश्चित करे ।

12. वर्तमान मामले में याची ने कोई साक्ष्य पेश किए बिना द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति हेतु भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के अधीन एक आवेदन फाइल किया है । जैसाकि इस न्यायालय द्वारा मंगत राम **बनाम** अशोक कुमार शर्मा, 2009 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 918 तारीख 22 मार्च, 2010 को

[1] 2016 की सी. एम. (प्रकीर्ण) सं. 789, तारीख 24 अगस्त, 2016 को विनिश्चित ।

विनिश्चित, वाले मामले में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि आवेदन न तो आवश्यक है न ही अपेक्षित है । याची को यह मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय से अनुज्ञा लेने के लिए आधार पेश करने के साक्ष्य सहित अपना साक्ष्य पेश करना चाहिए था कि क्या द्वितीयक साक्ष्य, साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है । किसी दस्तावेज पर पृष्ठांकन करने के पूर्व दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए, जैसाकि उपर्युक्त निर्णयों में उल्लेख किया गया है ।"

13. अतः इस न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **यू. श्री** बनाम **यू. श्री निवास**[1] और **एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **ए. रामालिंगम**[2] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकार का यह कर्तव्य है कि वह द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए तथ्यात्मक आधार प्रस्तुत करे । किसी तथ्यात्मक आधार के अभाव में द्वितीयक साक्ष्य अग्राह्य है । न्यायालय का यह दायित्व है कि वह अपने समक्ष पेश किए गए दस्तोवजों पर कोई पृष्ठांकन करने से पूर्व द्वितीयक साक्ष्य के रूप में दस्तावेजों की ग्राह्यता के प्रश्न को विनिश्चित करे ।

14. वर्तमान मामले में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने का याची का अनुरोध मौजूद नहीं है । याची इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह ऊपर अधिकथित विधि के अनुसार अपना द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए कार्रवाई करे ।

15. उपर्युक्त निदेशों के साथ वर्तमान याचिका और सभी लंबित आवेदन मंजूर किए जाते हैं ।

16. इस आदेश की एक-एक प्रति कोर्ट मास्टर के हस्ताक्षर से पक्षकारों को दस्ती दी जाए ।

याचिकाएं मंजूर की गईं ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415 = (2013) 2 एस. सी. सी. 114.

[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492.

वी. विद्या

बनाम

राज्य सूचना आयुक्त, चेन्नई और एक अन्य

तारीख 4 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति एम. दुरईस्वामी

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 6(1) और 24(4) – याची द्वारा सी. बी. सी. आई. डी. द्वारा की गई जांच के निष्कर्ष की प्रति, भेजे गए समनों की प्रति तथा जांच के दौरान एकत्रित सामग्री की प्रतियां मांगी जानी – प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 24(4) और तमिलनाडु सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश का अवलंब लिया जाना – याची द्वारा मांगी गई सूचना में गोपनीय जांच की विशिष्टियां सम्मिलित होना – अधिनियम की धारा 24(4) के अधीन सुरक्षा संगठनों को कतिपय मामलों में छूट दिए जाने के कारण ऐसी सूचना प्रदत्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ।

याची ने यह रिट याचिका प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 19 अगस्त, 2016 को पारित आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने के लिए और अभिलेख मंगाकर प्रत्यर्थी सं. 2 को उत्प्रेषण प्रकृति की परमादेश रिट जारी करके यह निदेश जारी करने के लिए फाइल की है कि वह याची द्वारा लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. से मांगी गई सभी सूचनाओं की आवश्यक प्रतियों का प्रदाय करें । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि संबंधित लोक सूचना अधिकारी नियत अवधि के भीतर सूचनाओं का प्रदाय करने में विफल रहा इसलिए उसने तारीख 25 सितंबर, 2015 को अपील प्राधिकारी के समक्ष सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(1) के अधीन प्रथम अपील फाइल की । चूंकि उसे नियत अवधि के भीतर सूचनाएं प्रदत्त नहीं की गई थीं इसलिए उसने सूचनाओं का प्रदाय न करने के लिए और 2015 की सी. पी. सं. 173 में साथ-साथ जांच कराने के लिए आयोग के समक्ष सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 18(1) के अधीन शिकायत फाइल की । उसने आयोग के निदेश के अनुसार अपने तारीख 18 दिसंबर, 2014 और तारीख 24 अगस्त, 2015 के आवेदनों पर संबंधित लोक सूचना अधिकारी से सूचना

प्राप्त करने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । उसने तारीख 9 जून, 2016 के आदेश के आधार पर सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन तारीख 22 जून, 2016 को द्वितीय अपील फाइल की जिसे आयोग द्वारा एस. ए. 5408/एफ./2016 के रूप में फाइल पर रजिस्टर किया गया । याची ने तारीख 1 दिसंबर, 2014 की शिकायत और मुख्यमंत्री के समक्ष की गई शिकायतों के संबंध में सी. बी. सी. आई. डी. पुलिस द्वारा की गई कार्रवाइयों के बारे में कतिपय सूचनाएं मांगी थीं । उसने यह भी कथन किया है कि ये शिकायतें उन दोषी पुलिस कर्मचारियों के विरुद्ध समुचित कार्रवाई करने के लिए दी गई थीं जिन्होंने उसे गिरफ्तार किया था और के. सी. बोस नामक व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के आधार पर उसे दांडिक मामलों में अभिरक्षा में निरुद्ध किया था और मामले के अन्वेषण के दौरान याची को गिरफ्तार करके रिमांड पर लिया था । याची द्वारा मांगी गई सूचना गंभीर और विशेषतया गोपनीय जांच प्रकृति की है । सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) ऐसे आसूचना और सुरक्षा संगठनों को लागू नहीं होगी जो राज्य सरकार द्वारा स्थापित ऐसे संगठन हैं, जिन्हें वह सरकार समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, परन्तु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी । परन्तु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के 45 दिनों के भीतर दी जाएगी । प्रत्यर्थियों ने जी. ओ. एम. एस. सं. 1043, पब्लिक (इस्टेब्लिशमेंट -I एंड लेग) डिपार्टमेंट, तारीख 14.10.2015 में दिए गए सरकारी आदेश का अवलंब लिया है जिसमें तमिलनाडु सरकार द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन कतिपय सूचनाओं का प्रदाय करने से सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) के अधीन कतिपय स्थापनों को मुक्त किया गया है । तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 के अनुसार सी. बी. सी. आई. डी. और विशेष अन्वेषण दल को सूचना का अधिकार अधिनियम के सूचना प्रदत्त करने से छूट दी गई है । प्रत्यर्थियों के अनुसार तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 में दिया गया सरकारी आदेश अभी भी प्रवृत्त है । सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) के उपबंधों और तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 को दृष्टिगत करते हुए प्रथम प्रत्यर्थी

आयोग ने यह ठीक ही मत व्यक्त किया है कि उसे याची द्वारा मांगी गई सूचना का प्रदाय करने के लिए लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. को निदेश करने की शक्ति प्राप्त नहीं है । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह भी उल्लेख किया है कि चूंकि याची को गिरफ्तार किया गया था और अन्वेषण के दौरान न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था इसलिए पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई असद्भावना का आरोप नहीं लगाया जा सकता । यह साबित करने वाली किसी सामग्री के अभाव में कि पुलिस अधिकारियों ने याची के मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया है और वे भ्रष्ट क्रियाकलापों में अन्तर्वलित हैं, प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलें ठीक ही खारिज की हैं । (पैरा 9, 11, 12 और 13)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका सं. 39767.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से सुश्री वी. विद्या, स्वयं

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री निरंजन राजागोपाल और ए. एन. थम्बीदुरई

न्यायमूर्ति एम. दुरईस्वामी – याची ने यह रिट याचिका प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 19 अगस्त, 2016 को पारित आक्षेपित आदेश में को अभिखंडित करने के लिए और अभिलेख मंगाकर प्रत्यर्थी सं. 2 को उत्प्रेषण प्रकृति की परमादेश रिट जारी करके यह निदेश जारी करने के लिए फाइल की है कि वह याची द्वारा लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. से मांगी गई सभी सूचनाओं की आवश्यक प्रतियां प्रदाय करे ।

2. संक्षेप में याची का पक्षकथन इस प्रकार है कि (i) याची के अनुसार वह एक कारबारी-स्त्री है और संपदा का कारबार करती है और कारबार के दौरान उसका ओरथर गांव में भू संव्यवहार के लिए के. सी. बोस, वेंकटकृष्णन और वेंकटस्वरन से परिचय कराया गया था । उक्त ग्राम में संव्यवहार से संबंधित भूमि का क्षेत्र 125 ग्राउन्ड था और उसे यह सूचित किया गया था कि यह भूमि उक्त के. सी. बोस की है । याची के अनुसार उसने दस्तावेजों को पूरा करने के लिए 25 लाख रुपए दिए थे । इसके पश्चात् उसने यह महसूस किया कि उक्त संपत्ति उक्त बोस नामक व्यक्ति की नहीं है इसलिए उसने उक्त के. सी. बोस और अन्यों के विरुद्ध

एक दांडिक शिकायत संस्थित की । तथापि, पुलिस ने शिकायत को इस आधार पर बंद कर दिया कि यह पूर्णतया एक सिविल विवाद है । (ii) याची के अनुसार इसके पश्चात् अपर पुलिस आयुक्त, ग्रेटर चेन्नई ने उसे यह बताया कि उसकी शिकायत उसके निकटतम सहयोगी के. सी. बोस की सुरक्षा के लिए फाइल पर अंकित नहीं की गई है और उन्होंने संकेतों में यह धमकी दी कि उक्त के. सी. बोस के विरुद्ध विधिक रूप से कार्यवाही रोकने के लिए उसके विरुद्ध मामले फाइल किए जाएंगे और विवाद्यक यह होगा कि उसने 125 ग्राउंड भूमि के रजिस्ट्रीकरण को पूरा करने के लिए के. सी. बोस को 25 लाख का संदाय करने में कपट किया था क्योंकि ओरथर गांव के वी. ए. ओ. द्वारा प्रमाणित राजस्व अभिलेखों के अनुसार ऐसा कोई भूखंड विद्यमान नहीं था । याची ने विस्तृत जांच कराने के लिए और शहर उपायुक्त और अन्यों को निलंबित कराने के लिए तारीख 12 जून, 2015 को तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को एक शिकायत दी थी । निदेशों के अनुसरण में अपर महानिदेशक सी. बी. सी. आई. डी. द्वारा अन्वेषण किया गया था और उसने साक्षियों के कथनों को अभिलिखित करने के पश्चात् एक रिपोर्ट भी फाइल की थी । याची ने तारीख 18 दिसंबर, 2014 को लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. को सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया । याची ने तारीख 1 दिसंबर, 2014 को तमिलनाडु के गृह सचिव को सरकार के खर्चे पर पुलिस संरक्षण देने के लिए भी दो आवेदन प्रस्तुत किए तथा असद्भाविक कार्यों के लिए 2009 के अपराध सं. 310 में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आवेदन दिया । परिणामस्वरूप उसके विरुद्ध अभियोजन किया गया । (iii) याची के अनुसार सम्पूर्ण मामले का विस्तार से उल्लेख करने के बावजूद राज्य सूचना आयुक्त ने जिसने मामले में संज्ञान लिया था, अपने आदेश में यह स्वीकार किया कि उसने टंकित कागज पत्रों का परिशीलन किया और अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि पुलिस कर्मचारी विधि के अनुसार कार्य कर रहे हैं जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन उपबंधित है और इसलिए यह साबित करने के लिए ऐसी कोई पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है कि पुलिस ने याची के मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया है और वह गलत क्रियाकलापों में अंतर्वलित है । याची ने प्रथम प्रत्यर्थी अर्थात् राज्य सूचना आयुक्त द्वारा पारित आदेश को आक्षेपित करते हुए उपर्युक्त रिट याचिका फाइल की है ।

3. वैयक्तिक रूप से उपस्थित सुश्री वी. विद्या और प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित श्री विद्वान् निरंजन राजागोपाल और द्वितीय प्रत्यर्थी की ओर से उ परिस्थित विद्वान् विशेष सरकारी अधिवक्ता श्री ए. एन. थम्बीदुरई को सुना गया ।

4. याची ने यह दलील दी कि सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 24(4) के परंतुक के अधीन वह लोक सूचना अधिकारी सी. बी. डी. आई. से मांगी गई सूचना पाने की हकदार है । याची ने अपनी दलील के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है :—

(i) उच्चतम न्यायालय ने 2008 की दांडिक अपील सं. 1485 में तारीख 7 जनवरी, 2014 को दिए गए एक अप्रकाशित निर्णय में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है —

"....................

21. दोषमुक्ति के किसी दांडिक मामले की समाप्ति पर दोषमुक्ति के लिए जिम्मेदार अधिकारियों अर्थात् संबंधित अन्वेषण अधिकारी/अभियोजन चलाने वाले अधिकारी की आवश्यक रूप से पहचान की जानी चाहिए । प्रत्येक मामले में यह निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने की आवश्यकता है कि क्या कमियां भूल से की गई थीं या जानबूझकर की गई थीं । प्रत्येक दोषी अधिकारी को समुचित विभागीय कार्रवाई द्वारा अपनी कमियों के परिणाम भुगतने चाहिए, जहां कहीं इसकी आवश्यकता हो । मामले की गंभीरता पर विचार करते हुए संबंधित कर्मचारी से अन्वेषण की जिम्मेदारियों को स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से वापस ली जाए या नहीं, यह बात पूर्णतया उसकी क्षमता पर आधारित है । हम कतिपय ऐसे अपरिहार्य उपाय करने के लिए स्वयं को मजबूर पाते हैं जो दांडिक मुकदमेदारी के दोनों पक्षकारों द्वारा भोगी गई व्याधि को कम करेंगे । तद्नुसार हम प्रत्येक राज्य सरकार के गृह विभाग को यह निदेश देते हैं कि वे सभी दोषी अन्वेषण अधिकारियों/अभियोजन अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई के लिए प्रक्रिया विरचित करें । ऐसे सभी दोषी कर्मचारी/अधिकारियों की पहचान की जाए जो पूर्णतया असावधानी के आधार पर या सदोष कमियों के कारण अभियोजन मामले की विफलता के

लिए और विभागीय कार्यवाही के लिए जिम्मेदार हों । अन्वेषण करने वाले अधिकारी या अभियोजन के कार्यों को करने वाले कर्मचारियों के अनुपालन में गंभीरता लाने के लिए रीति बनाई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि अन्वेषण और अभियोजन उपयोगी और निश्चयी हों । इस निदेश को 6 मास की अवधि के भीतर लागू किया जाए ।"

(ii) उच्चतम न्यायालय ने निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य, ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 785 = (1980) 2 एस. सी. सी. 559 वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है –

"..................

किसी भी व्यक्ति के साथ बर्ताव या दंड देने के मामले में प्रताड़ित नहीं किया जाएगा या क्रूरता नहीं बरती जाएगी या अमानवीयता नहीं बरती जाएगी, यह बात मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में सम्मिलित है । हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ पठित अनुच्छेद 19 की अन्तर्वस्तु समान रूप में सर्वोपरि है । तथापि, मानव अधिकारों के बारे में अनुरक्ति और सांविधानिक व्यादेशों के बारे में वाकपुटता अपनी विश्वसनीयता खो देती है यदि विधि के संरक्षक और राज्य के कृपापात्र (पुलिस मैन) आतंक के द्योतक बन जाते हैं या लोगों में भय फैलाते हैं । हम यह संप्रेक्षण करने के लिए मजबूर हैं क्योंकि हमारा अंतःकरण व्याकुल हो जाता है जब हम मामले के तथ्यों का परिशीलन करते हैं जो तथ्य विशेष इजाजत के लिए इस याचिका में हमारे समक्ष आक्षेपित आदेश में दिए गए हैं ।

....

12. हम मनोव्यथा के साथ टिप्पण करके इस आदेश को बंद करते हैं । शिकायतकर्ता ने राज्य के पक्षपात और पुलिस धमकियों के विरुद्ध विरोध प्रकट किया है । हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि कोई लोकतांत्रिक राज्य लोगों के हितों का रक्षक होता है न कि केवल पुलिस के हितों का । तब ऐसा क्यों हुआ कि दस पुलिस कर्मचारियों के दल के विरुद्ध एक मजिस्ट्रेट ने जांच करने पर यह पाया कि मामले में कार्रवाई की

जाए और हत्या सहित गंभीर आरोप विरचित किए जाएं और उन्हें ड्यूटी दिए बिना सेवा से निलंबित किया जाए जब तक कि लंबित सेशन विचारण का निपटान न कर दिया जाए ? राज्य किसके साथ है ? विधि का नियम एकतरफा नहीं होता है और राज्य के प्राधिकारी पुलिस के लिए नहीं लोगों के लिए होते हैं । कोई जिम्मेदार सरकार न्याय दिलाने के लिए उत्तरदायी है और उन पुलिस अधिकारियों को सेवा में न बनाए रखा जाए जिनके विरुद्ध किसी दंड न्यायालय द्वारा गंभीर आरोप विरचित किए गए हों और उन्हें तब तक निलंबित रखा जाए जब तक कि आपवादिक परिस्थितियां देश को ऐसा करने के लिए बाध्य न करें । क्योंकि न्याय करना न्यायालयों का कार्य है और सरकार का कार्य शासन करना है । हम इस बात के लिए आश्वस्त हैं कि असावधानी को ठीक किया जाएगा और महाराष्ट्र राज्य हेनरी किले की प्रसिद्ध उक्ति को नासाबित करेगी –

सभी देशों और सभी आयु में शक्ति की कला और इसके कृपापात्र एक जैसे हैं । यह अपने आहत को रेखांकित करते हैं, उसे दोषारोपित करते हैं और उसे लोक निंदा से अंतर्वलित करते हैं और अपने दुर्व्यवहार को और दोषों को छुपाने के लिए लोगों को परेशान करते हैं ।''

5. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री निरंजन राजागोपाल ने याची द्वारा दी गई दलीलों का विरोध करते हुए यह दलील दी कि याची सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 24 के अधीन इस कारण से लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. से ब्यौरे प्राप्त करने की हकदार नहीं है क्योंकि याची द्वारा पेश किए गए मामले भ्रष्टाचार के मामले और मानव अधिकार अतिक्रमण के मामले नहीं हैं ।

6. याची ने यह साबित करने के लिए कि अभियोजन विद्वेषपूर्ण था, अपने संपूर्ण मामले का उल्लेख किया है । याची ने यह कहा है कि अभियोजन के दोषपूर्ण और अवैध कार्य से जो कि शिकायतकर्ताओं की सहमति से किया गया है, मामला लोगों की दृष्टि में उसकी ख्याति कम करने के लिए और उसके मित्रों तथा नातेदारों के समक्ष ख्याति कम करने के लिए विद्वेषपूर्ण आशय से चलाया गया है । उसने यह भी कथन किया है कि स्पष्टतया उसे डराने के लिए और के. सी. बोस के मामले में उसके

द्वारा आगे कार्यवाहियों को रोकने के लिए उसके विरुद्ध मिथ्या मामले गढ़े गए हैं ।

7. यह उल्लेखनीय है कि याची ने लोक सूचना अधिकारी के समक्ष लंबित तारीख 1 दिसंबर, 2014 की शिकायत की स्थिति को जानने का अनुरोध किया था । उक्त शिकायत संयुक्त सचिव तमिलनाडु द्वारा आवश्यक कार्रवाई करने के लिए अपर महा निदेशक पुलिस, सी. बी. सी. आई. डी. को भेजी गई थी । चूंकि लोक सूचना अधिकारी उपबंधित नियत अवधि के भीतर सूचना का प्रदाय करने में विफल रहा इसलिए शिकायतकर्ता ने सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19 (1) के अधीन अपील फाइल की थी । चूंकि प्रथम अपील फाइल करने के पश्चात् भी सूचना का प्रदाय नहीं किया गया था इसलिए उसने सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 18(1) के अधीन आयोग में 2015 की सी. पी. सं. 173 फाइल की थी । आयोग ने जांच के दौरान 2015 की शिकायत सं. एम. पी. 15086 के साथ संयुक्त विचारण करने के लिए सुनवाई को स्थगित करते हुए तारीख 10 फरवरी, 2016 का आदेश पारित किया । याची ने जांच के दौरान इस बात पर बल दिया कि उसे सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन द्वितीय अपील फाइल किए बिना सूचना के अधिकार के आवेदन के अधीन सूचना दिलाई जाए । आयोग ने तारीख 9 जून, 2016 को याची को यह निदेश करते हुए आदेश पारित किया कि वह अपनी तारीख 18 दिसंबर, 2014 और तारीख 24 अगस्त, 2015 के सूचना के अधिकार के आवेदनों पर संबंधित लोक सूचना अधिकारी से सूचना प्राप्त करने के लिए 15 दिन के भीतर आयोग के समक्ष सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन द्वितीय अपीलें फाइल करें । याची ने तारीख 9 जून, 2016 के आदेश के आधार पर सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन द्वितीय अपील फाइल की जो तारीख 18 दिसंबर, 2014 के सूचना के अधिकार के आवेदन से संबंधित थी । आयोग ने इस अपील को एस. ए. 5407/एफ/2016 के रूप में फाइल पर रजिस्ट्रीकृत किया था ।

8. याची ने निम्नलिखित सूचना के लिए अनुरोध करते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था :–

(क) तारीख 1 दिसंबर, 2014, 22 दिसंबर, 2014 और 23 दिसंबर, 2014 की उसकी शिकायत के आधार पर उप पुलिस

अधीक्षक श्री बालू और ए. जी. डी. पी. श्री करन सिंघा द्वारा तारीख 8 जुलाई, 2015 और तारीख 17 अगस्त, 2015 को जांच की गई थी । याची ने लोक सूचना अधिकारी से उप अधीक्षक श्री बालू और ए. जी. डी. पी. श्री करन सिंघा के निष्कर्षों की प्रति और साक्षियों के कथनों के साथ साक्षियों को भेजे गए समनों की प्रतियां और उनके द्वारा की गई जांचों के संबंध में एकत्रित सामग्री की प्रतियां का प्रदाय करने का अनुरोध किया था ।

9. चूंकि संबंधित लोक सूचना अधिकारी नियत अवधि के भीतर सूचनाओं का प्रदाय करने में विफल रहा इसलिए उसने तारीख 25 सितंबर, 2015 को अपील प्राधिकारी के समक्ष सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(1) के अधीन प्रथम अपील फाइल की । चूंकि उसे नियत अवधि के भीतर सूचनाएं प्रदत्त नहीं की गई थीं इसलिए उसने सूचनाओं का प्रदाय न करने के लिए और 2015 की सी. पी. सं. 173 में साथ-साथ जांच कराने के लिए आयोग के समक्ष सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 18(1) के अधीन शिकायत फाइल की । उसने आयोग के निदेश के अनुसार अपने तारीख 18 दिसंबर, 2014 और तारीख 24 अगस्त, 2015 के आवेदनों पर संबंधित लोक सूचना अधिकारी से सूचना प्राप्त करने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । उसने तारीख 9 जून, 2016 के आदेश के आधार पर सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन तारीख 22 जून, 2016 को द्वितीय अपील फाइल की जिसे आयोग द्वारा एस. ए. 5408/एफ./2016 के रूप में फाइल पर रजिस्टर किया गया । याची ने तारीख 1 दिसंबर, 2014 की शिकायत और मुख्यमंत्री के समक्ष की गई शिकायतों के संबंध में सी. बी. सी. आई. डी. पुलिस द्वारा की गई कार्रवाइयों के बारे में कतिपय सूचनाएं मांगी थीं । उसने यह भी कथन किया है कि ये शिकायतें उन दोषी पुलिस कर्मचारियों के विरुद्ध समुचित कार्रवाई करने के लिए की गई थीं जिन्होंने उसे गिरफ्तार किया था और के. सी. बोस नामक व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के आधार पर उसे दांडिक मामलों में अभिरक्षा में निरुद्ध किया था और मामले के अन्वेषण के दौरान याची को गिरफ्तार करके रिमांड पर लिया था । याची द्वारा मांगी गई सूचना गंभीर और विशेषतया गोपनीय जांच प्रकृति की है ।

10. यहां सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 24 का उल्लेख करना उपयोगी होगा जो इस प्रकार है :–

"24. अधिनियम का कतिपय संगठनों को लागू न होना – (1) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई बात केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित आसूचना और सुरक्षा संगठनों को, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं या ऐसे संगठनों द्वारा उस सरकार को दी गई किसी सूचना को लागू नहीं होगी :

परंतु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी :

परंतु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानवाधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना केन्द्रीय सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के 45 दिन के भीतर दी जाएगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में किसी अधिसूचना द्वारा, अनुसूची का उस सरकार द्वारा स्थापित किसी अन्य आसूचना या सुरक्षा संगठन को उसमें सम्मिलित करके या उसमें पहले से विनिर्दिष्ट किसी संगठन का उससे लोप करके, संशोधन कर सकेगी और ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन पर ऐसे संगठन को अनुसूची में, यथास्थिति, सम्मिलित किया गया या उसका उससे लोप किया गया समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

(4) इस अधिनियम की कोई बात ऐसे आसूचना और सुरक्षा संगठनों को लागू नहीं होगी, जो राज्य सरकार द्वारा स्थापित ऐसे संगठन हैं, जिन्हें वह सरकार समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे :

परंतु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी :

परंतु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना राज्य आयोग के

अनुमोदन के पश्चात् दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के पैंतालीस दिनों के भीतर दी जाएगी ।

(5) उपधारा (4) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी ।"

11. सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) ऐसे आसूचना और सुरक्षा संगठनों को लागू नहीं होगी जो राज्य सरकार द्वारा स्थापित ऐसे संगठन हैं, जिन्हें वह सरकार समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, परन्तु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी । परन्तु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के 45 दिनों के भीतर दी जाएगी ।

12. प्रत्यर्थियों ने जी. ओ. एम. एस. सं. 1043, पब्लिक (इस्टेब्लिशमेंट -I एंड लेग) डिपार्टमेंट, तारीख 14.10.2015 में दिए गए सरकारी आदेश का अवलंब लिया है जिसमें तमिलनाडु सरकार द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन कतिपय सूचनाओं का प्रदाय करने से सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) के अधीन कतिपय स्थापनों को मुक्त किया गया है । तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 के अनुसार सी. बी. सी. आई. डी. और विशेष अन्वेषण दल को सूचना का अधिकार अधिनियम के सूचना प्रदत्त करने से छूट दी गई है ।

13. प्रत्यर्थियों के अनुसार तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 में दिया गया सरकारी आदेश अभी भी प्रवृत्त है । सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24(4) के उपबंधों और तारीख 14.10.2015 के जी. ओ. एम. एस. सं. 1043 को दृष्टिगत करते हुए प्रथम प्रत्यर्थी आयोग ने यह ठीक ही मत व्यक्त किया है कि उसे याची द्वारा मांगी गई सूचना का प्रदाय करने के लिए लोक सूचना अधिकारी सी. बी. सी. आई. डी. को निदेश करने की शक्ति प्राप्त नहीं है । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह भी उल्लेख किया है कि चूंकि याची को गिरफ्तार किया गया था और अन्वेषण के दौरान न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था इसलिए पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई असद्भावना का आरोप नहीं लगाया जा सकता । यह साबित

करने वाली किसी सामग्री के अभाव में कि पुलिस अधिकारियों ने याची के मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया है और वे भ्रष्ट क्रियाकलापों में अन्तर्वलित हैं, प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलें ठीक ही खारिज की हैं ।

14. ऊपर उल्लिखित कारणों से याची द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय वर्तमान मामले को लागू नहीं होते हैं ।

15. इन परिस्थितियों में रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार रिट याचिका खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2018) 1 सि. नि. प. 708 **मद्रास**

के. गुरुसामी

बनाम

जी. मल्लिगा

तारीख 6 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति आर. सुब्बय्या और न्यायमूर्ति ए. डी. जगदीश चन्द्र

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 24 और हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) – धारा 18(2)(च) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए वाद – पत्नी द्वारा वाद के लंबन के दौरान भरणपोषण और मुकदमेबाजी के खर्चे की मांग करते हुए आवेदन – पति द्वारा इस आधार पर इनकार किया जाना कि पत्नी ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है – विधिमान्यता – ऐसे किसी आधार पर पत्नी को भरणपोषण और मुकदमेदारी का खर्चा देने से इनकार नहीं किया जा सकता – तथापि, न्यायालय को पक्षकारों की हैसियत, वित्तीय और दायित्वों को ध्यान में रखना चाहिए ।

अपीलार्थी-पति द्वारा यह अपील 2016 की एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1061 में कुटुंब न्यायालय,

इरोड द्वारा तारीख 23 फरवरी, 2016 को पारित आदेश की वैधता को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । 2016 का अंतरिम आवेदन सं. 1061 हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन पति या पत्नी में से किसी के द्वारा फाइल किए गए आवेदन में पक्षकारों की वित्तीय हैसियत और उसकी स्वयं अपना भरणपोषण करने की क्षमता या यथास्थिति वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान उसकी स्थिति पर विचार किया जाना आवश्यक है । इस प्रक्रम पर जो विनिश्चित किया जाना है वह यह है कि आय के स्रोत क्या हैं या आवेदक स्वयं अपना भरणपोषण करने में या वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान अपना भरणपोषण करने में समर्थ है या नहीं । इस प्रयोजन के लिए न्यायालयों से यह अपेक्षित नहीं है कि वे यह देखें कि क्या पति या पत्नी का किसी दूसरे धर्म में धर्म परिवर्तन हुआ है या नहीं । जैसा कि हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 की धारा (2)(च) के अधीन अनुध्यात है या क्या हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन किसी आवेदन में मांगे गए अंतरिम भरणपोषण से इनकार करने के लिए यह कोई आधार होगा या नहीं । दूसरे शब्दों में, हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 की धारा (2)(च), यथास्थिति, पति या पत्नी के द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन अंतरिम भरणपोषण के लिए किए गए दावे पर विचार करने के लिए लागू नहीं होती है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 18(2(च) के अधीन अनुध्यात उपबंध न्यायालयों द्वारा केवल न्यायालय के समक्ष के अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संपन्न विवाह को विघटित करने के लिए फाइल किए गए मूल आवेदन का विनिश्चय करते समय लागू किए जा सकते हैं और ये उपबंध हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा वादकालीन भरणपोषण की ईप्सा करने के लिए फाइल किए गए आवेदन पर विचार करने के लिए न्यायालय को किसी प्रकार से प्रभावित नहीं करेंगे । अतः माननीय उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त विनिश्चय से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन में पक्षकारों की हैसियत उनकी आवश्यकताओं, यथास्थिति, पति या पत्नी की संदाय करने की क्षमता, उनके युक्तियुक्त खर्चों और पत्नी द्वारा अपना भरणपोषण करने की क्षमता पर विचार करना सुसंगत है

और इस बात पर विचार करना सुसंगत है कि क्या वह विधि और कानून के अधीन दायित्वाधीन है तथापि, इसमें अनैच्छिक रूप से किए गए संदाय या कटौतियां सम्मिलित नहीं हैं । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए न्यायालय का यह मत है कि कुटुंब न्यायालय, इरोड अपीलार्थी को अंतिम भरणपोषण का संदाय करने और प्रत्यर्थी को मुकदमेदारी के खर्चों का निदेश करने में सही है और न्यायालय को उक्त आदेश में कोई अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । जहां तक अधिनिर्णीत धनराशि के परिणाम का संबंध है, न्यायालय का यह मत है चूंकि कि मुकदमेदारी के खर्चों के रूप में 5,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त मासिक भरणपोषण के रूप में केवल 6,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है जो न्यायालय की राय में अधिक नहीं कही जा सकती । (पैरा 5 और 6)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2017]	ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1640 : **मनीष जैन** बनाम **आकांक्षा जैन** ।	4, 5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1409.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. श्रीनिवास

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एन. मनोकरन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. सुब्बय्या ने दिया ।

न्या. सुब्बय्या – अपीलार्थी-पति द्वारा यह अपील 2016 की एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1061 में कुटुंब न्यायालय, इरोड द्वारा तारीख 23 फरवरी, 2016 को पारित आदेश की वैधता को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । 2016 का अंतरिम आवेदन सं. 1061 हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया था ।

2. हमारे समक्ष के अपीलार्थी-पति ने कुटुंब न्यायालय, इरोड के समक्ष 2016 की एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 फाइल की थी जिसमें उसने अपने

और प्रत्यर्थी के बीच तारीख 11 जून, 1986 को संपन्न विवाह को विघटित करने हेतु विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए अनुरोध किया था। मूल आवेदन के लंबन के दौरान पत्नी-प्रत्यर्थी ने 2016 की एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 में 2016 का अंतिरम आवेदन सं. 1061 फाइल किया था जिसमें हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन अपीलार्थी को यह निदेश करने के लिए यह अनुरोध किया गया था कि वह अंतरिम भरणपोषण के रूप में 10,000/- रुपए और मुकदमेदारी के खर्चों के रूप में 10,000/- रुपए की अतिरिक्त धनराशि का संदाय करे। पत्नी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन का पति-अपीलार्थी द्वारा विरोध किया गया था। कुटुंब न्यायालय ने दोनों पक्षकारों को सुनने और अभिलेख पर के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी का आवेदन मंजूर कर लिया और पति-अपीलार्थी को मासिक भरणपोषण के रूप में 6,000/- रुपए और मुकदमेदारी के खर्चों के रूप में 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने का निदेश किया। पति-अपीलार्थी ने उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने बल देते हुए यह दलील दी है कि पूर्व में हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इरोड के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन 2005 की एम. सी. सं. 42 फाइल की थी। प्रत्यर्थी ने उपर्युक्त कार्यवाहियों में साक्ष्य देते हुए यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि उसने 6 वर्ष पूर्व हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में धर्म परिवर्तन कर लिया है। प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथित किया कि वह हमारे समक्ष के अपीलार्थी के साथ रहने के लिए तैयार नहीं है। विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इरोड ने उपर्युक्त साक्ष्य की अवेक्षा करते हुए हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई एम. सी. सं. 42 तारीख 25 जुलाई, 2008 को खारिज कर दी। इसे दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किया गया वर्तमान आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है। कुटुंब न्यायालय, इरोड ने 2005 की एम. सी. सं. 42 में अभिलिखित साक्ष्य को विचार में लिए बिना गलत रूप से हमारे समक्ष के अपीलार्थी को अंतिरम भरणपोषण के रूप में 6,000/- रुपए मासिक धनराशि और प्रत्यर्थी के मुकदमों के खर्चों के रूप में 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने का निदेश दिया है। अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस संबंध में इस न्यायालय का ध्यान हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 की

धारा 18(2) की ओर दिलाया है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि कोई हिन्दू पत्नी भरणपोषण के अपने दावे को त्यक्त किए बिना अपने पति से पृथक् रहने के लिए हकदार है और उक्त अधिनियम की धारा 18(2)(च) के अनुसार वह अपने जीवनकाल के दौरान अपने पति से भरणपोषण पाने की हकदार है यदि वह (पति) अपने धर्म को हिन्दू धर्म से किसी अन्य धर्म में परिवर्तित कर लेता है । वर्तमान मामले में हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी ने अपना धर्म हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया है और पृथक् रह रही है इसलिए वह भरणपोषण के लिए हकदार नहीं है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार कुटुंब न्यायालय, इरोड ने उपर्युक्त विधिक स्थिति पर विचार किए बिना गलत रूप से प्रत्यर्थी के लिए अंतरिम भरणपोषण अधिनिर्णीत किया है और इसलिए उन्होंने निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने का अनुरोध किया है ।

4. इसके प्रतिकूल हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मनीष जैन** बनाम **आकांक्षा जैन**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 में 'भरण पोषण' पद का प्रयोग नहीं किया गया है और इसके बजाय केवल 'संभाल' पद का प्रयोग किया गया है और हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के उल्लिखित उपबंधों का एक साथ निर्वचन करने पर विधान मंडल का यह आशय स्पष्ट होता है कि, यथास्थिति, पति या पत्नी को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए 'संभाल' शब्द का प्रयोग किया गया है जो वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान प्रदान की जा सकती है । यथास्थिति न्यायालय द्वारा पति या पत्नी के किसी अन्य धर्म में धर्म परिवर्तन को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल आवेदन में विनिश्चित नहीं किया जा सकता । कुटुंब न्यायालय, इरोड ने हमारे समक्ष की पत्नी-प्रत्यर्थी द्वारा अभिव्यक्त कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए उसके दिन प्रतिदिन के खर्चों को पूरा करने के लिए अपीलार्थी को मासिक भरणपोषण के रूप में पत्नी-प्रत्यर्थी को 6,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने तथा मुकदमेदारी के खर्चों के रूप में 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने का ठीक ही निदेश दिया है और इसमें इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1640.

5. हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन पति या पत्नी में से किसी के द्वारा फाइल किए गए आवेदन में पक्षकारों की वित्तीय हैसियत और उसकी स्वयं अपना भरणपोषण करने की क्षमता या यथास्थिति वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान उसकी स्थिति पर विचार किया जाना आवश्यक है । इस प्रक्रम पर जो विनिश्चित किया जाना है वह यह है कि आय के स्रोत क्या हैं या आवेदक स्वय अपनां भरणपोषण करने में या वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान अपना भरणपोषण करने में समर्थ है या नहीं । इस प्रयोजन के लिए न्यायालयों से यह अपेक्षित नहीं है कि वे यह देखें कि क्या पति या पत्नी का किसी दूसरे धर्म में धर्म परिवर्तन हुआ है या नहीं जैसा कि हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 की धारा (2)(च) के अधीन अनुध्यात है या क्या हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन किसी आवेदन में मांगे गए अंतरिम भरणपोषण से इनकार करने के लिए यह कोई आधार होगा या नहीं । दूसरे शब्दों में, हिन्दू दत्तक और भरणंपोषण अधिनियम, 1956 की धारा (2)(च), यथास्थिति, पति या पत्नी के द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन अंतरिम भरणपोषण के लिए किए गए दावे पर विचार करने के लिए लागू नहीं होती है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 18((2)(च) के अधीन अनुध्यात उपबंध न्यायालयों द्वारा केवल हमारे समक्ष के अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संपन्न विवाह को विघटित करने के लिए फाइल किए गए मूल आवेदन का विनिश्चय करते समय लागू किए जा सकते हैं और ये उपबंध हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा वादकालीन भरणपोषण की ईप्सा करने के लिए फाइल किए गए आवेदन पर विचार करने के लिए न्यायालय को किसी प्रकार से प्रभावित नहीं करेंगे । जैसी कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मनीष जैन** बनाम **अकांक्षा जैन**[1] वाले मामले का दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह ठीक ही दलील दी गई है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 में 'भरणपोषण' पद का उपयोग नहीं किया गया है अपितु 'संभाल' शब्द का उल्लेख किया गया है, जिसका यह अर्थ है कि वे इस बात पर विचार करें कि क्या आवेदक जिसने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन आवेदन फाइल किया है, स्वयं

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1640.

अपना भरणपोषण (संभाल) करने की स्थिति में है या नहीं या क्या वह वैवाहिक कार्यवाहियों के लंबन के दौरान अपना भरणपोषण कर सकती है । उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश का सुसंगत भाग इस प्रकार है :—

"14. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 न्यायालय को अधिनियम के अधीन कोई कार्यवाही करने के लिए सशक्त करती है । यदि न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि यथास्थिति, पति या पत्नी में से किसी के पास अपने भरण पोषण या संभाल के लिए पर्याप्त आय नहीं है और उसके पास कार्यवाही के लिए आवश्यक खर्चों के लिए धन नहीं है तो न्यायालय उनमें से किसी के आवेदन पर दूसरे पक्षकार के लिए आवेदक को कार्यवाहियों के खर्चे के लिए और मासिक भरणपोषण का संदाय करने के लिए ऐसा आदेश कर सकता है जैसाकि वह उचित समझे । तथापि न्यायालय को आवेदक और प्रत्यर्थी दोनों की आय को भी विचार में लेना चाहिए । अधिनियम की धारा 24 का शीर्षक 'वाद लंबित रहते भरणपोषण और कार्यवाहियों के व्यय' है । तथापि धारा में 'भरणपोषण' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु 'संभाल' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका निर्वचन धारा 24 में इस प्रकार किया जा सकता है कि वह वाद लंबित रहते भरणपोषण के लिए उपबंध किया जाना आशयित है ।

25. 'वाद लंबित रहते भरणपोषण और कार्यवाहियों के व्यय' के लिए कोई आदेश इस परिस्थिति पर आधारित है कि पति या पत्नी के पास जिसने आवेदन किया है, अपने लिए या अपने संभाल के लिए पर्याप्त स्वतंत्र आय है या नहीं या कार्यवाहियों के आवश्यक खर्चों को पूरा करने के लिए धन है या नहीं । इस बात के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है कि भरणपोषण के दावे के लिए पत्नी शिक्षित है और अपना भरणपोषण कर सकती है । इसी प्रकार पत्नियों के माता-पिता की वित्तीय स्थिति भी आतात्विक है । न्यायालय को पक्षकारों की हैसियत और भरणपोषण का संदाय करने की पति या पत्नी की क्षमता पर और इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या आवेदक की अपने लिए या अपने संभाल के लिए स्वतंत्र पर्याप्त आय है । चूंकि भरणपोषण सदैव तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर होता है इसलिए न्यायालय को अपने समक्ष पेश किए गए विभिन्न कारकों पर आधारित प्रमाण का अवधारण करते हुए भरणपोषण के दावे पर विचार करना

चाहिए ।"

6. अतः माननीय उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त विनिश्चय से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन में पक्षकारों की हैसियत उनकी आवश्यकताओं, यथास्थिति, पति या पत्नी की संदाय करने की क्षमता, उनके युक्तियुक्त खर्चों और पत्नी द्वारा अपना भरणपोषण करने की क्षमता पर विचार करना सुसंगत है और इस बात पर विचार करना सुसंगत है कि क्या वह विधि और कानून के अधीन दायित्वाधीन है तथापि, इसमें अनैच्छिक रूप से किए गए संदाय या कटौतियां सम्मिलित नहीं हैं । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए हमारा यह मत है कि कुटुंब न्यायालय, इरोड अपीलार्थी को अंतिम भरणपोषण का संदाय करने और प्रत्यर्थी को मुकदमेदारी के खर्चों का निदेश करने में सही है और हमें उक्त आदेश में कोई अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । जहां तक अधिनिर्णीत धनराशि के परिमाण का संबंध है, हमारा यह मत है चूंकि कि मुकदमेदारी के खर्चों के रूप में 5,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त मासिक भरणपोषण के रूप में केवल 6,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है जो हमारी राय में अधिक नहीं कही जा सकती ।

7. परिणामतः, हम कुटुंब न्यायालय, इरोड की फाइल पर के 2016 के एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 में 2016 के अंतिरम आवेदन सं. 1061 में तारीख 23 फरवरी, 2016 को पारित आदेश की पुष्टि करते हैं । अतः सिविल प्रकीर्ण अपील खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए हम कुटुंब न्यायालय, इरोड को यह निदेश देते हैं कि वह अपनी फाइल पर के 2016 के एफ. सी. ओ. पी. सं. 258 का इस निर्णय की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से 6 मास की अवधि के भीतर निपटान करें । परिणामतः 2017 की सी. एम. पी. सं. 7538 बंद की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

आर. रामासुब्बू

बनाम

टी. प्रसन्ना और एक अन्य

तारीख 10 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति आर. सुब्रह्मनियन

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 12 – करार – अननुपालन – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विक्रेता के मुख्तार-अभिकर्ता की जानकारी के बिना भूमि के क्षेत्र और प्रतिफल के बारे में तात्विक परिवर्तन – वादी के काउंसेल द्वारा प्रेषित नोटिस में करार की तारीख प्रतिफल की राशि, संदत्त अग्रिम धनराशि और शेष प्रतिफल के बारे में कोई उल्लेख न किया जाना – वादी न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से न आने के कारण विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हकदार नहीं है ।

वादी जिसने विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद फाइल किया था और जिसे विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, इस अपील में अपीलार्थी है । वादी के अनुसार उसने तारीख 25 मार्च, 2006 को प्रतिवादियों के साथ विक्रय के लिए एक करार निष्पादित किया था जिसमें और जिसके द्वारा प्रतिवादियों ने 7,60,000/- के कुल प्रतिफल के लिए 9657 वर्ग फुट माप की भूमि को विक्रीत करने के लिए करार किया था । करार की तारीख को 1,25,000/- रुपए की धनराशि अग्रिम धन के रूप में संदत्त की गई थी और संविदा के अनुपालन के लिए 45 दिन की अवधि नियत की गई थी । द्वितीय प्रतिवादी ने प्रथम प्रतिवादी के अभिकर्ता मुख्तार के रूप में विक्रय करार का निष्पादन किया था । द्वितीय प्रतिवादी ने तारीख 30 अप्रैल, 2006 को 1,35,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की थी और पुनः तारीख 28 मई, 2006 को 3,40,500/- रुपए की धनराशि प्राप्त की । चूंकि प्रतिवादी इस तथ्य के बावजूद कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक था, विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए नहीं आए, इसलिए वादी ने तारीख 26 फरवरी, 2006 को एक विधिक सूचना प्रेषित की । प्रतिवादियों ने यह दावा करते हुए तारीख 9 जुलाई, 2006 को उत्तर प्रेषित किया कि सूचना अपने आप में अस्पष्ट है

और चूंकि वादी ने करार के अधीन नियत की गई अवधि के भीतर संव्यवहार के अपने भाग का अनुपालन नहीं किया इसलिए वे वादी की मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं । इसके पश्चात् वादी ने विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुरोध करते हुए तारीख 29 फरवरी, 2006 को वर्तमान वाद फाइल किया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वादी ने अपने दावे को सफल करने के लिए वाद से संबंधित करार को तात्विक रूप से परिवर्तित किया है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष एक साम्यापूर्ण अनुतोष होने के नाते यह अभिनिर्धारित किया कि वादी सही आशय से न्यायालय के समक्ष नहीं आया है और इसलिए वह अनुरोध किए गए अनुतोष के लिए हकदार नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयार नहीं था । विचारण न्यायालय ने वादी के इस दावे को भी खारिज कर दिया कि संपत्ति के संबंध में किए गए परिवर्तन और संपत्ति से संबंधित सर्वेक्षण संख्याओं और प्रतिफल के बारे में किए गए परिवर्तन प्रतिवादी सं. 1 और 2 की जानकारी में किए गए थे । विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद खारिज कर दिया । अतः वादी ने यह अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्पष्ट है कि पक्षकारों ने विक्रय के समय नियत कीमत का पालन नहीं किया । आश्चर्यजनक रूप से विक्रय कीमत दोनों पक्षकारों द्वारा सहमत कीमत से बहुत कम है । प्रतिवादियों ने वादी के हक में किए गए करारों अर्थात् प्रदर्श-बी2 और प्रदर्श-बी3 को पेश किया है जिनमें कोई सुधार नहीं किए गए हैं । प्रदर्श-बी2 और प्रदर्श-बी3 के अनुसार करार किए गए भूखंड का प्रतिफल 7,60,000/- रुपए है न कि सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए कीमत 7,60,000/- रुपए । निस्संदेह जैसी कि अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा यह ठीक ही दलील दी गई है कि प्रदर्श-बी2 में कतिपय खाली स्थान हैं और उक्त खाली स्थान मुख्तारनामे की तारीख और संख्या तथा समझौता विलेख की तारीख से संबंधित हैं जिनका करार के प्रवर्तनीय भाग से कोई संबंध नहीं है । तथापि, प्रदर्श-ए1 तथा प्रदर्श-ए10 और प्रदर्श-ए11 इन करारों के प्रवर्तनीय भाग में हैं जो भूमि की सीमा और संदत्त किए जाने वाले प्रतिफल से संबंधित हैं । वादियों के विद्वान् काउंसेल अपने समस्त प्रयासों के बावजूद डी. डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य में

की गई स्वीकृति के बारे में कारण बताने में असमर्थ हैं और यह बात इस न्यायालय को यह उपधारित करने के लिए प्रेरित करती है कि सुधार प्रथम प्रतिवादी के अभिकर्ता मुख्तार प्रतिवादी सं. 2 की जानकारी में किए गए हैं । इसके अतिरिक्त वादी ने वाद संस्थित करने से पूर्व तारीख 22 जून, 2006 को सूचना जारी की थी । उक्त सूचना में करार की गई कीमत या संदत्त अग्रिम या शेष प्रतिफल के बारे में कुछ नहीं कहा गया है जो विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुरोध करने वाले किसी काउंसेल द्वारा जारी की गई सूचना में उल्लिखित करना अत्यंत आवश्यक है । उक्त सूचना में करार की तारीख का भी उल्लेख नहीं किया गया है । अतः वादी के मामले में ये कमियां, प्रतिवादियों के इस कथन को संभव बनाती हैं कि वाद से संबंधित करार को प्रश्नगत भूमि के लिए संदत्त कीमत के निर्देश में तात्विक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है, जिससे कि वादी का वाद सफल हो । निस्संदेह वादी यह उपदर्शित करने में सफल रहा है कि अन्य करारों में कतिपय सुधार किए गए हैं । तथापि, यह उपधारित नहीं किया जा सकता कि ये सुधार द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित करते समय स्वीकार कर लिए गए हैं क्योंकि विक्रय विलेखों में उल्लिखित प्रतिफल इन करारों के अधीन नियत कीमत से भिन्न हैं । किसी भी विक्रय विलेख के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रदर्श-ए10 और प्रदर्श-ए11 के अर्थात् प्रदर्श-ए13 और प्रदर्श-ए14 के अनुसरण में निष्पादित किए गए हैं क्योंकि प्रदर्श-ए10 और ए11 में मूल्य उपदर्शित है । अतः यह न्यायालय विद्वान् काउंसेल द्वारा वादी के हक में वाद से संबंधित करार में तात्विक परिवर्तन के संबंध में दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । चूंकि वादी इस न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से नहीं आया है इसलिए वह किसी साम्यापूर्ण डिक्री का अनुरोध नहीं कर सकता । अतः अवधारण के लिए विरचित दोनों मुद्दों का उत्तर वादी के विरुद्ध दिया जाता है । निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए यह अपील खर्चों सहित खारिज की जाती है । (पैरा 11 और 12)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की ए. एस. सं. 203.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री एन. आनंद वेंकटेश और एम. पी. थंगवेल
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री टी. श्रीकृष्ण भागवत और मैसर्स पी. सुब्बा रेड्डी

न्यायमूर्ति आर. सुब्रह्मनियन – वादी जिसने विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद फाइल किया था और जिसे विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, इस अपील में अपीलार्थी है । वादी के अनुसार उसने तारीख 25 मार्च, 2006 को प्रतिवादियों के साथ विक्रय के लिए एक करार निष्पादित किया था जिसमें और जिसके द्वारा प्रतिवादियों ने 7,60,000/- रूपए के कुल प्रतिफल के लिए 9657 वर्ग फुट माप की भूमि को विक्रीत करने के लिए करार किया था । करार की तारीख को 1,25,000/- रुपए की धनराशि अग्रिम धन के रूप में संदत्त की गई थी और संविदा के अनुपालन के लिए 45 दिन की अवधि नियत की गई थी । द्वितीय प्रतिवादी ने प्रथम प्रतिवादी के अभिकर्ता मुख्तार के रूप में विक्रय करार का निष्पादन किया था । द्वितीय प्रतिवादी ने तारीख 30 अप्रैल, 2006 को 1,35,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की थी और पुनः तारीख 28 मई, 2006 को 3,40,500/- रुपए की धनराशि प्राप्त की । चूंकि प्रतिवादी इस तथ्य के बावजूद कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक था, विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए नहीं आए, इसलिए वादी ने तारीख 26 फरवरी, 2006 को एक विधिक सूचना प्रेषित की । प्रतिवादियों ने यह दावा करते हुए तारीख 9 जुलाई 2006 को उत्तर प्रेषित किया कि सूचना अपने आप में अस्पष्ट है और चूंकि वादी ने करार के अधीन नियत की गई अवधि के भीतर संव्यवहार के अपने भाग का अनुपालन नहीं किया इसलिए वे वादी की मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं । इसके पश्चात् वादी ने विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुरोध करते हुए तारीख 29 फरवरी, 2006 को वर्तमान वाद फाइल किया ।

2. प्रतिवादियों द्वारा यह अभिकथन करते हुए उक्त वाद का विरोध किया गया था कि वाद से संबंधित करार को तात्विक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है । प्रतिवादियों के अनुसार भूखंड के लिए करार की गई कीमत 7,60,000/- रुपए थी न कि 9657 वर्ग फुट सम्पूर्ण भूमि के लिए 7,60,000/- रुपए । यह भी अभिकथन किया गया कि वादी ने अपनी सुविधा के अनुसार करार को तात्विक रूप से परिवर्तित कर लिया था । प्रतिवादियों ने यह भी अभिवाक् किया कि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं है ।

3. विद्वान् जिला न्यायाधीश, छेंगलपेट ने उक्त अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या तारीख 25 मार्च, 2006 का करार प्रवर्तनीय है ?

(ii) क्या यह सही है कि करार में तात्विक परिवर्तन किए गए हैं जैसाकि प्रतिवादियों ने अभिवाक् किया है ?

(iii) क्या अवधि संविदा के लिए सारवान् है ?

(iv) क्या वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद (डिक्री) के लिए हकदार है जैसाकि अनुरोध किया गया है ?

4. वादी की ओर से पी. डब्ल्यू. 1 से पी. डब्ल्यू. 3 की परीक्षा की गई और प्रदर्श-ए1 से प्रदर्श-ए14 को चिह्नांकित किया गया । प्रतिवादियों की ओर से डी. डब्ल्यू. 1 अर्थात् प्रथम प्रतिवादी के अभिकर्ता मुख्तार की परीक्षा की गई थी और प्रदर्श-बी1 से प्रदर्श-बी4 को चिह्नांकित किया गया ।

5. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वादी ने अपने दावे को सफल करने के लिए वाद से संबंधित करार को तात्विक रूप से परिवर्तित किया है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष एक साम्यापूर्ण अनुतोष होने के नाते यह अभिनिर्धारित किया कि वादी सही आशय से न्यायालय के समक्ष नहीं आया है और इसलिए वह अनुरोध किए गए अनुतोष के लिए हकदार नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयार नहीं था । विचारण न्यायालय ने वादी के इस दावे को भी खारिज कर दिया कि संपत्ति के संबंध में किए गए परिवर्तन और संपत्ति से संबंधित सर्वेक्षण संख्याओं और प्रतिफल के बारे में किए गए परिवर्तन प्रतिवादी सं. 1 और 2 की जानकारी में किए गए थे । विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद खारिज कर दिया । अतः वादी ने यह अपील फाइल की ।

6. मैंने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउसेंल श्री एम. पी. थंगवेल के लिए श्री एन. आनंद वेंकटेश और प्रतिवादी की ओर से मैसर्स पी. सुब्बा रेड्डी के लिए श्री टी. श्रीकृष्ण भागवत को सुना ।

7. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री एन. आनंद वेंकटेश ने यह दलील दी कि वादी के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने फायदे के लिए करार को तात्विक रूप से परिवर्तित किया है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी उपर्युक्त दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित परिस्थितियों का अवलंब लिया है ।

8. वादी और द्वितीय प्रतिवादी जो प्रथम प्रतिवादी का अभिकर्ता मुख्तार था, के बीच तारीख 25 मार्च, 2006 को प्रदर्श-ए1 करार के अतिरिक्त 3 अन्य करार निष्पादित किए गए थे । सभी चारों करारों में संपत्ति की प्रतिफल तथा सर्वेक्षण संख्याओं के संबंध में सुधार किए गए थे । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि जहां तक तीन अन्य करारों का संबंध है, द्वितीय प्रतिवादी द्वारा पी. डब्ल्यू. 2 तथा उसके नामनिर्देशितियों के हक में विक्रय विलेख निष्पादित कर दिए गए हैं । उन्होंने मेरे समक्ष डी. डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य विशेषतया प्रतिपरीक्षा का यह दलील देने के लिए निर्देश किया है कि प्रतिवादियों द्वारा सुधार की कहानी विचार-विमर्श के पश्चात् गढ़ी गई है ।

9. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री टी. श्रीकृष्ण भागवत ने यह दलील दी कि प्रदर्श-ए10 और प्रदर्श-ए11 के रूप में चिह्नांकित करारों और प्रदर्श-ए13 और प्रदर्श-ए14 के रूप में चिह्नांकित विक्रय विलेखों में उल्लिखित प्रतिफल के बीच कोई समानता नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रदर्श-ए10 अर्थात् 8618 वर्ग फुट भूमि को 3,87,810/- रुपए में विक्रीत करना उपदर्शित किया गया है जबकि प्रदर्श-ए13 में 8618 वर्ग फुट भूमि 7,60,000/- रुपए में विक्रीत करना करार किया गया है । समान रूप में प्रदर्श-ए11 करार में 9990 वर्ग फुट भूमि 7,60,000/- रुपए में विक्रीत करना उपदर्शित किया गया है, जबकि प्रदर्श-ए14 में 9990 वर्ग फुट भूमि 4,49,550/- रुपए में विक्रीत करना उपदर्शित किया गया है ।

10. उपर्युक्त परस्पर विरोधी दलीलों को दृष्टिगत करते हुए इस अपील में विचारार्थ निम्नलिखित मुद्दा उद्‌भूत हुआ है :–

> "क्या विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी द्वारा प्रतिवादियों के मुख्तार की जानकारी के बिना प्रदर्श-ए1 में किए गए परिवर्तन हैं, वादी को विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुरोध करने के लिए हकदार नहीं बनाते ।"

11. यह स्पष्ट है कि पक्षकारों ने विक्रय के समय नियत कीमत का पालन नहीं किया । आश्चर्यजनक रूप से विक्रय कीमत दोनों पक्षकारों द्वारा सहमत कीमत से बहुत कम है । प्रतिवादियों ने वादी के हक में किए गए करारों अर्थात् प्रदर्श-बी2 और प्रदर्श-बी3 को पेश किया है जिनमें कोई सुधार नहीं किए गए हैं । प्रदर्श-बी2 और बी3 के अनुसार करार किए गए

भूखंड का प्रतिफल 7,60,000/- रुपए है न कि सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए कीमत 7,60,000/- रुपए । निस्संदेह जैसी कि अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा यह ठीक ही दलील दी गई है कि प्रदर्श-बी2 में कतिपय खाली स्थान हैं और उक्त खाली स्थान मुख्तारनामे की तारीख और संख्या तथा समझौता विलेख की तारीख से संबंधित हैं जिनका करार के प्रवर्तनीय भाग से कोई संबंध नहीं है । तथापि, प्रदर्श-ए1 तथा प्रदर्श-ए10 और ए11 इन करारों के प्रवर्तनीय भाग में हैं जो भूमि की सीमा और संदत्त किए जाने वाले प्रतिफल से संबंधित हैं । वादियों के विद्वान् काउंसेल अपने समस्त प्रयासों के बावजूद डी. डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य में की गई स्वीकृति के बारे में कारण बताने में असमर्थ हैं और यह बात इस न्यायालय को यह उपधारित करने के लिए प्रेरित करती है कि सुधार प्रथम प्रतिवादी के अभिकर्ता मुख्तार प्रतिवादी सं. 2 की जानकारी में किए गए हैं ।

12. इसके अतिरिक्त वादी ने वाद संस्थित करने से पूर्व तारीख 22 जून, 2006 को सूचना जारी की थी । उक्त सूचना में करार की गई कीमत या संदत्त अग्रिम या शेष प्रतिफल के बारे में कुछ नहीं कहा गया है जो विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुरोध करने वाले किसी काउंसेल द्वारा जारी की गई सूचना में उल्लिखित करना अत्यंत आवश्यक है । उक्त सूचना में करार की तारीख का भी उल्लेख नहीं किया गया है । अतः वादी के मामले में ये कमियां, प्रतिवादियों के इस कथन को संभव बनाती हैं कि वाद से संबंधित करार को प्रश्नगत भूमि के लिए संदत्त कीमत के निर्देश में तात्विक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है, जिससे कि वादी का वाद सफल हो । निस्संदेह वादी यह उपदर्शित करने में सफल रहा है कि अन्य करारों में कतिपय सुधार किए गए हैं । तथापि, यह उपधारित नहीं किया जा सकता कि ये सुधार द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित करते समय स्वीकार कर लिए गए हैं क्योंकि विक्रय विलेखों में उल्नलिखित प्रतिफल इन करारों के अधीन नियत कीमत से भिन्न हैं । किसी भी विक्रय विलेख के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रदर्श-ए10 और प्रदर्श-ए11 के अर्थात् प्रदर्श-ए13 और प्रदर्श-ए14 के अनुसरण में निष्पादित किए गए हैं क्योंकि प्रदर्श-ए10 और प्रदर्श-ए11 में मूल्य उपदर्शित है । अतः यह न्यायालय विद्वान् काउंसेल द्वारा वादी के हक में वाद से संबंधित करार में तात्विक परिवर्तन के संबंध में दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । चूंकि वादी इस न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से नहीं आया है इसलिए वह किसी साम्यापूर्ण डिक्री का अनुरोध नहीं कर सकता । अतः

अवधारण के लिए विरचित दोनों मुद्दों का उत्तर वादी के विरुद्ध दिया जाता है । निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए यह अपील खर्चों सहित खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2018) 1 सि. नि. प. 723 राजस्थान

बाम्बे प्लास्टर इंडस्ट्रीज (मैसर्स), बीकानेर

बनाम

जगदम्बा प्लास्टर, बीकानेर

तारीख 3 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति पी. के. लोहरा

पण्य चिन्ह अधिनियम, 1999 (1999 का 47) – धारा 27 – चला देने की कार्यवाही के कारण भ्रम की संभाव्यता – यह अभिवाक् कि प्रतिवादी का पण्य चिन्ह "हाई-टेक" वादी के पण्य चिन्ह "हाई-टेक" के विरुद्ध धोखा देने वाली समरूपता रखता है किन्तु अभिलेख पर ऐसी कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि प्रतिवादी का पण्य चिन्ह भ्रम उत्पन्न कर रहा है – एकल रंग का प्रयोग, जिसके, आधार पर प्रतिवादी को वाणिज्यिक बेईमानी के लिए दोषी ठहराया जा सके अन्तर्निहित रूप से सुभिन्न नहीं माना जा सकता – चला देने की कार्यवाही पोषणीय नहीं हैं ।

पण्य चिन्ह अधिनियम, 1999 – धारा 27 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 39, नियम 1 और 2] – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के बाबत स्थायी व्यादेश जारी किए जाने के लिए फाइल किए गए वाद में विलम्ब – वादी द्वारा प्रतिवादी को धोखा देने वाली समानता रखने वाले पण्य चिन्ह "हाई-टेक" का प्रयोग करने से निषेधित किए जाने के लिए अनुतोष की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा पूर्ववर्ती वाद वापस लिया जाना और बाद में नया वाद फाइल किया जाना और नया वाद फाइल किए जाने में कारित पांच वर्षों के विलम्ब का स्पष्टीकरण न दिया जाना –

प्रतिवादी के विरुद्ध विगत पांच वर्षों से किसी निरोधादेश का प्रभाव में न होना – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के लिए फाइल किया गया वाद पोषणीय नहीं है ।

पण्य चिन्ह अधिनियम, 1999 – धारा 27 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 39, नियम 1 और 2] – पण्य चिन्ह के अतिलंघन के बाबत अस्थायी व्यादेश का अनुतोष – प्रतिवादी को धोखा देने वाली समानता रखने वाले पण्य चिन्ह "हाई-टेक" का अभिकथित रूप से प्रयोग करने से निषेधित किया जाना – "हाई-टेक" सामान्य शब्द है और इसका अर्थान्वयन प्रतिवादी द्वारा धोखा देने वाली कार्यवाही के संबंध में नहीं किया जा सकता – बेईमानीपूर्ण आशय और बुरी नियत के साथ समान शब्दों के प्रयोग को साबित न किया जाना – अस्थायी व्यादेश का अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-वादी ने 1999 के पण्य चिन्ह अधिनियम और 1957 के प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम से उत्पन्न होने वाले अपने बौद्धिक संपदा अधिकारों (आई. पी. आर.) के अतिलंघन की शिकायत करते हुए दोनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध शाश्वत और आज्ञापक व्यादेश के अनुतोषों ईप्सा करते हुए अन्य बातों के साथ इस आधार पर वाद संस्थित कराए कि वह प्लास्टर आफ पेरिस का विनिर्माता है और उसने 1999 और 1957 के उक्त अधिनियमों के अंतर्गत उक्त उत्पाद का रजिस्ट्रीकरण "हाई-टेक" लेबल के अन्तर्गत कराया । वादपत्र में आगे यह प्रकथन किया गया है वादी अपने माल की बाह्य पैकेजिंग के लिए उक्त लेबल का प्रयोग कर रहा है जिस पर अंग्रेजी में "हाई-टेक" लेवल का प्रदर्शन किया जा रहा है और जिसके नीचे हरे रंग की पृष्ठभूमि में शब्द "जिप्सम" लिखा है और सबसे नीचे एक गोल घेरे के भीतर एक भवन का चित्रात्मक प्रदर्शन है । अपीलार्थी ने वादपत्रों में आगे यह प्रकथन भी किया है कि वह उक्त पण्य चिन्ह (ट्रेड मार्क) में आत्मसात कलात्मक विशेषताओं का स्वामी और कर्ता-धर्ता होने के कारण तारीख 19 मई, 2014 के रजिस्ट्रीकरण संख्या ए-110645/20 के अन्तर्गत उस पण्य चिन्ह में प्रतिलिप्याधिकार रखता है । इस बात पर जोर देते हुए कि वह उक्त पण्य चिन्ह लेबल में अन्तर्वलित लक्षण मूल प्रकृति के हैं, अपीलार्थी-वादी ने वादपत्र में आगे प्रकथन किया है कि वही 1957 के अधिनियम के अर्थान्तर्गत उसका एकमात्र स्वामी है । अपनी ख्याति की चर्चा करते हुए

अपीलार्थी-वादी ने दोनों वादपत्रों में अभिवाक् किया कि बाजार में उपरोक्त पण्य चिन्ह/लेबल के अन्तर्गत उसके उत्पाद ने जबरदस्त ख्याति और ईर्ष्यायोग्य प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है जिस कारणवश इस पण्य चिन्ह/लेबल के अन्तर्गत काफी बड़ा व्यापार स्थापित हो गया है । अपीलार्थी-वादी ने वादपत्रों में प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों को उनके द्वारा उनके माल प्लास्टर आफ पेरिस पर अपने पण्य चिन्ह/लेबल की नकल किए जाने और उनके माल पर समरूपता वाले लेबलों "हाई-टेक" और "आई-टेक", जिनमें से दोनों के द्वारा 1999 और 1957 के अधिनियमों का अतिक्रमण हुआ, का कपटपूर्वक प्रयोग किए जाने के लिए डपटा है । वादपत्रों में प्रत्यर्थियों के लेबलों में समरूपता पर जोर देते हुए यह अभिवचन किया गया कि दोनों ही पण्य चिन्हों के द्वारा अपीलार्थी-वादी के पण्य चिन्ह लेबल की ज्यों का त्यों नकल समरूप लेबल, भवन के प्रदर्शन के समरूप तरीके के साथ रंगों के सुस्पष्ट सम्मिश्रण-हल्के हरे और नारंगी रंग के सम्मिश्रण का प्रयोग किए जाने के द्वारा की गई है । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के कार्यों और चूकों पर गंभीरतापूर्वक आपत्ति व्यक्त करते हुए वादपत्रों में यह अभिवचन भी किया है कि उनके द्वारा किए गए कार्य बेईमानीपूर्ण, असद्भावपूर्ण और कपटपूर्ण हैं । उनके द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि, अपीलार्थी-वादी का प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के माल की गुणवत्ता पर कोई नियंत्रण नहीं है और इसलिए रंगों के समन्वय के साथ लेबल की समग्र रूप से सादृश्यता और प्रत्यर्थियों के माल की पैकिंग करने वाले बोरों पर आकृतियों की बनावट और उनके विन्यास के कारण बाजार में अपीलार्थी की ख्याति और प्रतिष्ठा के नुकसान की कीमत पर भ्रान्ति और गलतफहमी की पूर्ण संभाव्यता है । अपीलार्थी द्वारा दोनों अपीलें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 नियम (1)(द) सपठित धारा 104 के अधीन बीकानेर के अपर जिला न्यायाधीश संख्या 4 द्वारा पारित तारीख 17 मार्च, 2017 के आदेश, जिसके द्वारा शाश्वत और आज्ञापक व्यादेश के लिए फाइल किए गए, दो वादों में अन्तरिम व्यादेश के उसके आवेदनों को एक ही आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया, को चुनौती देते हुए पृथक्-पृथक् फाइल की गई हैं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी लेबल/पण्य चिन्ह अपीलार्थी के पण्य चिन्ह के मुकाबले में धोखा देने वाली समरूपता रखता है या यह ग्राहकों के मध्य "भ्रम की संभाव्यता" को सृजित करने का एक

सकारात्मक प्रयास है । अपीलार्थी द्वारा यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि प्रत्यर्थी के लेबल/पण्य चिन्ह के कारण "भ्रम की संभाव्यता" सृजित हो गई है । यह सत्य है कि न्यायालय "भ्रम की संभाव्यता" पर न्यायनिर्णयन करते हुए उसको भ्रमपूर्ण या अविश्वसनीय कहते हुए उससे तत्काल रूप से इनकार नहीं कर सकता किन्तु तत्पश्चात् आधुनिक तकनीकी के प्रादुर्भाव के साथ "भ्रम की संभाव्यता" वाद फाइल करने वाले पर उच्चतर अवसीमा के अधिरोपण का सुझाव देती है । इसलिए, न्यायालय को भय है कि न्यायालय के समक्ष उपस्थित मामले के विलक्षण तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्टभूमि में अपीलार्थी-वादी का प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध "चला देने की कार्यवाही" का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, न्यायालय के विचार में एकल रंग के प्रयोग को अन्तर्निहित रूप से सुभिन्न रंग के रूप में नहीं माना जा सकता जिसके आधार पर प्रत्यर्थी को वाणिज्यक बेईमानी के लिए प्रथमदृष्ट्या दंडित किया जा सके । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या मामले पर नकारात्मक निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, मामले के इस पहलू को संबोधित करने का गंभीरतापूर्वक प्रयास किया, इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती । अब अन्य प्रत्यर्थी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज के लेबल पण्य चिन्ह पर विचार करते हैं, यह मताभिव्यक्ति किया जाना पर्याप्त होगा कि इस लेबल पण्य चिन्ह के प्रयोजनार्थ अभिव्यक्ति "हाई-टेक" का प्रयोग किया गया है जो अपीलार्थी के लेबल पण्य चिन्ह "हाई-टेक" के नितान्त रूप से समरूप है । इसके अतिरिक्त, अभिन्यास, रंगों का संयोजन और अन्य लक्षण भी उक्त लेबल पण्य चिन्ह में कुछ न कुछ समरूपता रखते हैं । चाहे कुछ भी हो, प्रथम दृष्ट्या यह समझा जाना निश्चित रूप से समझा जाना कठिन होगा कि प्रत्यर्थी का लेबल पण्य चिन्ह अपीलार्थी के लेबल पण्य चिन्ह के मुकाबले धोखा देने वाली समरूपता रखता है । इसलिए, यह प्रश्न कि इसके कारण अपीलार्थी के उत्पाद के संबंध में ग्राहकों के मध्य भ्रम उत्पन्न होने की संभाव्यता है, अपीलार्थी-वादी द्वारा प्रस्तुत की गई तर्कपूर्ण सामग्री के आभाव में इस प्रक्रम पर इस बात की कल्पना किया जाना निश्चित रूप से कठिन होगा । लभगभ 5 वर्ष की अवधि के व्यतीत हो जाने के कारण और उपलब्ध आंकडों के आधार पर कि अपीलार्थी ने ख्याति और साथ ही धन संबंधी हानि को बर्दाश्त किया है, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी ने

अपीलार्थी की ख्याति का नुकसान करते हुए अपने माल/उत्पाद का विक्रय प्रोन्नत किया है । इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि जब कोई पक्ष अपने बौद्धिक संपदा अधिकारों के अतिलंघन की शिकायत करता है, तो वह किसी विनिर्दिष्ट अधिकार या हित की भविष्य में अधिसंभाव्य हानि के लिए साम्यापूर्ण अनुतोष की ईप्सा करते हुए, आशंकाओं पर आधारित विधिक सिद्धांत का अवलंब लेने का हकदार होता है किन्तु यहां पर साम्या सतर्क व्यक्ति का साथ देती है और न कि अकर्मण्य व्यक्ति का । चूंकि प्रत्यर्थी के विरुद्ध पिछले लगभग 5 वर्षों से कोई निषेधादेश नहीं था और विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर विचार करते हुए, अपीलार्थी को कोई भी साम्यापूर्ण अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया है, न्यायालय इस पहलू पर आक्षेपित आदेश में कोई शिथिलता नहीं पाता । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर भविष्य में होने वाली पूर्वानुमान पर आधारित किसी भी हानि के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है और जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा न्यायतः मताभिव्यक्ति की गई है, इसका अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन केवल वाद के पूर्णरूप से विचारण के पश्चात् ही किया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय ने अपने नवीनतम निर्णय, यद्यपि यह निर्णय भिन्न संदर्भ में पारित किया गया था और वादी के न्यायालय की शरण में विलम्ब से आने के कारण उसके अनुकूल नहीं है, में मताभिव्यक्ति की गई कि वादी को प्रतिवादी पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्यों के द्वारा अनुचित विलम्ब और चूकें करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । वर्तमान मामलों में अपीलार्थी/वादी ने पहले भी दो पृथक्-पृथक् वाद प्रत्यर्थियों के विरुद्ध वर्ष 2013 में फाइल किए थे, जिनको किन्हीं कारणोंवश नया वाद फाइल करने की स्वतंत्रता के साथ तारीख 29 मार्च, 2016 को वापस ले लिया गया था और इन दोनों वादों के लम्बन के दौरान कोई व्यादेश प्रभावी नहीं था । वास्तविकता यह है कि इन दोनों ही वादों में विद्वान् विचारण न्यायालय ने अस्थायी की प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और तत्पश्चात् उन आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई अपील को भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । यद्यपि यह सत्य है कि अपीलार्थी ने पूर्ववर्ती वादों को वापस लेने के लिए विद्वान् विचारण न्यायालय से नया वाद फाइल करने की स्वतंत्रता ले ली थी और तत्पश्चात् नए वाद फाइल कर दिए थे किन्तु नए वाद फाइल किए जाने के लिए अपीलार्थी-वादी की ओर से की गई विलम्बित कार्यवाही की बाबत कोई तर्कपूर्ण स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया था । यद्यपि अपीलार्थी-वादी ने

निरन्तर चलने वाला वाद कारण दर्शित किया है किन्तु प्रथम वाद कारण अक्तूबर, 2013 का है जो अपीलार्थी द्वारा पर्याप्त रूप से विलम्बित वाद कारण दर्शित करता है, इसलिए, इस संदर्भ में उच्च न्यायालय द्वारा टोयटा जिदोशा काबूशिकी कायशा (उपरोक्त) वाले मामले में की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है और जिसको नीचे उद्धृत किया गया है – "यदि वादी द्वारा (भारत में) किसी विनिर्दिष्ट अधिकारिता (क्षेत्र में) ख्याति या प्रतिष्ठा स्थापित नहीं की गई है, तो निश्चित रूप से चला देने की कार्यवाही जो उसने प्रतिवादियों के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में आरम्भ की थीं, में वादी के अधिकार की सीमा को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी अन्य विवाद्यक के परीक्षण की आवश्यकता नहीं है । परिणामस्वरूप यदि न्यायालय "प्रयास" चिन्ह की उत्पत्ति के बाबत प्रतिवादी के पक्षकथन को स्वीकार करने में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए मत से असहमत है, तो खंड न्यायपीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष मान्य ठहराए जाएंगे । न्यायालय इसमें कोई सहायता नहीं कर सकते किन्तु न्यायालय यह मताभिव्यक्ति करता है कि वादी द्वारा न्यायालय की शरण में जाने में किए गए विलम्ब का कोई स्पष्टीकरण नहीं है । ऐसे विलम्ब को प्रतिवादियों, जिन्होंने वादी द्वारा मौन धारण किए जाने की असामान्य रूप से लम्बी अवधि के दौरान अपने माल के बाजार में विपणन हेतु अपने रजिस्ट्रीकृत चिन्ह का प्रयोग निरन्तर रूप से किया है, पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के प्रयोजनार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता ।" जैसी कि ऊपर मताभिव्यक्ति की गई है, किसी लेबल/पण्य चिन्ह का रंग प्रथमदृष्ट्या धोखा देने वाली समरूपता को अभिनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी का अनन्य अधिकार नहीं हो सकता और इस प्रकार अन्य पहलुओं अर्थात् लक्ष्णों का क्रमबंधन, डिजाइन, अभिन्यास और लोगों का तरीका से इनकार नहीं किया जा सकता । अपेक्षित सामग्री के अभाव में दोनों लेबलों/पण्य चिन्हों का परीक्षण किए जाने पर इस प्रक्रम पर यह कठिन है कि ग्राहकों के मध्य "भ्रम की संभाव्यता" का अनुमान लगाया जा सके और "मुकदमे के दौरान" वाले सिद्धांत का अवलंब लिया जा सके । प्रत्यर्थी का यह आक्षेप कि अभिव्यक्ति "हाई-टेक" सामान्य शब्द है, का भी अनदेखा न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता । यह एक निर्विवाद तथ्य है कि शब्द "हाई-टेक" का प्रयोग भारत में अनेक कम्पनियों, कारबार प्रतिष्ठानों और संगठनों द्वारा किया जाता है न कि जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा नमक-मिर्च लगाकर बताया गया है । यह सत्य है कि सामान्य शब्द का

अर्थान्वयन सभी समस्याओं के हल के रूप में नहीं किया जा सकता यदि गलत कार्य करने वाले पक्ष की धोखाधड़ी वाली कार्यवाही या अनुचित व्यापार पद्धति अनुमार्गणीय हो । इसलिए, वाद फाइल करने वाले पक्ष के साथ साम्यापूर्ण न्याय किए जाने के लिए और प्रतिवादी के विरुद्ध निषेधादेश पारित किए जाने के लिए बेईमानीपूर्ण आशय और बुरी नियत के साथ समरूप शब्द या शब्दों का प्रयोग पूर्व शर्त है । उच्चतम न्यायालय ने टी. वी. वेणुगोपाल वाले मामले में सामान्य शब्द पर विचार करते हुए निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की – "प्रतिवादी की दलील यह है कि विशेषण सामान्यतः धोखा देने वाले शब्द होते हैं । तथापि, मैकारथी ने कहा कि (21 का 17) उक्त "शब्द के भेद" का परीक्षण निर्णयज्ञ विधि के परिणामों का ठीक-ठीक वर्णन नहीं करता और इसलिए ऐसे किसी मापदंड को यह अभिनिश्चित किए जाने के लिए सुरक्षित और विश्वस्त आधार की भांति स्वीकार नहीं किया जा सकता कोई विशिष्ट नाम सामान्य प्रकृति का है या धोखा देने वाली प्रकृति का । इसके अतिरिक्त, यह उपधारणा करते हुए भी कि उक्त शब्द सामान्य है, फिर भी यदि न्यायालय द्वारा यह पाया जाता है कि इस प्रकार के किसी शब्द में सुभिन्नता प्राप्त कर ली है और पर्याप्त समय से वादी के कारबार के साथ सहबद्ध है और तत्पश्चात् किसी अन्य समरूप शब्द को भोले-भाले इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं को धोखे से प्रतिवादी की वैबसाइट पर आने के प्रयोजनार्थ अपने दो चिन्हों में से किसी एक चिन्ह के रूप में अंगीकृत कर लेता है जो उसके बेईमानीपूर्ण आशय और बदनीयती को स्थापित कर देती है, तो क्या न्यायालय तब भी वादी के कारबार को संरक्षित करने के लिए व्यादेश प्रदान नहीं करेगा ? उक्त प्रश्न का उत्तर सुस्पष्टतः "नहीं" होना चाहिए । बेईमानीपूर्ण आशय के साथ जुड़े हुए किसी प्रतियोगी द्वारा समान शब्द का प्रयोग न्यायालय को ऐसे प्रयोगकर्ता/दुष्प्रयोगकर्ता को निषेधित किए जाने और व्यथित पक्ष के साथ साम्यापूर्ण न्याय करने के लिए सशक्त करता है ।" उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रत्यर्थी का बेईमानीपूर्ण आशय या उसकी बदनीयती प्रथमदृष्ट्या दृष्टिगोचित नहीं होती । अतः टी. वी. वेणुगोपाल वाले मामले में दिया गया निर्णय स्पष्टतः महत्वपूर्ण हो जाता है । इसलिए, न्यायालय के आक्षेपित आदेश का परीक्षण करने के उपरान्त दोनों अपीलों में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 नियम 1 के अधीन प्रतिष्ठापित अपीली अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनार्थ विधि और तथ्यों की चूक और वह भी प्रकट चूक पाने में असमर्थ हूं । तथापि, दोनों ही वादों में 1999 और 1957 के

अधिनियमों के अभिकथित अतिक्रमण के बारे में अन्तर्वलित वाद और चला देने की कार्यवाही पर विचार करते हुए, न्यायालय वाद के शीघ्र निष्तारण सुनिश्चित करना चाहता हूं । (पैरा 18, 19, 20, 21, 22, 23 और 29)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 167 : **टोयटा जिदोशा काबूशिकी कायशा** बनाम **प्रायस आटो इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य ;**	21
[2017]	2017 (70) पी. टी. सी. 293 (राज.) : **रमेश चन्द्र पालीवाल** बनाम **सीमा एण्ड कम्पनी ;**	10
[2016]	(2016) 2 एस. सी. सी. 683 : **एस. सैय्यद मोहिदीन** बनाम **पी. सुलोचना बाई ;**	10
[2016]	(2016) 11 एस. सी. सी. 484 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1948 : **मेसर होल्डिंग्स लिमिटेड** बनाम **श्याममदनमोहन रुईया और अन्य ;**	10
[2016]	2016 (67) पी. टी. सी. 116 (राज.) : **महेश्वरी टी कम्पनी** बनाम **विजय एजेन्सी ;**	10
[2015]	ए. आई. आर. 2015 राज. 218 : **मैसर्स पंडित कुल्फी एण्ड कैफे** बनाम **मैसर्स पंडित कुल्फी ;**	10
[2015]	(2015) 10 एस. सी. सी. 161 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3479 : **इंडियन फरफारमिंग राईट्स सोसाइटी लिमिटेड** बनाम **संजय दलीया और अन्य ;**	10
[2013]	ए. आई. आर. 2013 दिल्ली 143 : **मोहन लाल, प्रोपराइटर आफ मौर्या इंडस्ट्रीज** बनाम **सोना पेंट एण्ड हार्डवेयर ;**	13
[2012]	2012 (49) पी. टी. सी. 46 (दिल्ली) : **सोसाइटे डेस प्रोड्यूइट्स नैस्ले** बनाम **कान्टिनेटल काफी लिमिटेड ;**	10

[2011] (2011) 4 एस. सी. सी. 85 = 2011 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1742 :
टी. वी. वेणुगोपाल बनाम **उसोदया इंटरप्राइजेज लिमिटेड और एक अन्य** ; 10

[2010] (2010) 2 एस. सी. सी. 142 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3221 :
स्काइलाइन एजुकेशन इन्स्टीट्यूट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम **एस. एल. वासवानी और अन्य** ; 13

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 3123 :
डाबर इंडिया लिमिटेड बनाम **के. आर. इंडस्ट्रीज** ; 13

[2007] (2007) 6 एस. सी. सी. 1 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3615 :
हीन्ज इटेलिया और एक अन्य बनाम **डाबर इंडिया लिमिटेड** ; 10

[2007] 2007 (35) पी. टी. सी. 533 (राज.) :
सबको इंडस्ट्रीज बनाम **केवल एमरी** ; 10

[2006] (2006) 9 एस. सी. सी. 41 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 730 :
ढोढा हाउस बनाम **एस. के. मैंगी** ; 13

[2002] (2002) 3 एस. सी. सी. 65 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 275 :
लक्ष्मीकांत वी. पटेल बनाम **चेतनभाई शाह और अन्य** ; 10

[2001] (2001) 5 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1952 :
केडिला हेल्थ केयर लिमिटेड बनाम **केडिला फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड** ; 28

[1997] (1997) 1 एस. सी. सी. 99 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1398 :
बंगाल वाटरप्रूफ लिमिटेड बनाम **बाम्बे वाटरप्रूफ मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी और एक अन्य** ; 10

[1990] (1990) सप्ली. एस. सी. सी. 727 :
वांडर लिमिटेड और एक अन्य बनाम **एंटोक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड ;** 27

[1972] (1972) 1 एस. सी. सी. 618 :
पारले प्रोडक्ट्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम **जे. पी. एण्ड कम्पनी, मैसूर ;** 10

पी. टी. सी. (सप्ली.) (1) 615 (दिल्ली) :
कायरा डिस्ट्रिक्ट को-आपरेटिव मिल्क प्रोड्यूसर्स यूनियन लिमिटेड बनाम **भारत कान्फेक्शनरी वर्क्स (रजि.) ;** 10

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 980 :
कविराज पंडित दुर्गादत्त शर्मा बनाम **नवरत्न फार्मास्यूटीकल लेबोरेटीज ;** 10

[1958] ए. आई. आर. 1958 बाम्बे 56 (डी. बी.) :
सीबा लिमिटेड बेस्ले, स्विटजरलैंड बनाम **एम. रामालिंगम् और एस. सुब्रमणियम ट्रेडिंग इन दा नेम आफ साउथ इंडियन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, मदुरा और एक अन्य ।** 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील संख्या 1097.

याची की ओर से डा. अशोक सोनी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आर. सी. जोशी

निर्णय

अपीलार्थी द्वारा यह दोनों अपीलें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 नियम (1)(द) सपठित धारा 104 के अधीन बीकानेर के अपर जिला न्यायाधीश संख्या 4 (संक्षेप में विद्वान् विचारण न्यायालय) द्वारा पारित तारीख 17 मार्च, 2017 के आदेश, जिसके द्वारा शाश्वत और आज्ञापक व्यादेश के लिए फाइल किए गए दो वादों में अन्तरिम व्यादेश के उसके आवेदनों को एक ही आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया, को चुनौती देते हुए पृथक्-पृथक् फाइल की गई हैं ।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी-वादी ने 1999 के पण्य चिन्ह अधिनियम (संक्षेप में "1999 का अधिनियम") और 1957 के प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम (संक्षेप में "1957 का अधिनियम") से उत्पन्न होने वाले अपने बौद्धिक संपदा अधिकारों (आई. पी. आर.) के अतिलंघन की शिकायत करते हुए दोनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध शाश्वत और आज्ञापक व्यादेश के अनुतोषों की ईप्सा करते हुए अन्य बातों के साथ इस आधार पर वाद संस्थित कराए कि वह प्लास्टर आफ पेरिस का विनिर्माता है और उसने 1999 और 1957 के उक्त अधिनियमों के अंतर्गत उक्त उत्पाद का रजिस्ट्रीकरण "हाई-टेक" लेबल के अन्तर्गत कराया । वादपत्र में आगे यह प्रकथन किया गया है कि वादी अपने माल की बाह्य पैकेजिंग के लिए उक्त लेबल का प्रयोग कर रहा है जिस पर अंग्रेजी में "हाई-टेक" लेवल का प्रदर्शन किया जा रहा है और जिसके नीचे हरे रंग की पृष्ठभूमि में शब्द "जिप्सम" लिखा है और सबसे नीचे एक गोल घेरे के भीतर एक भवन का चित्रात्मक प्रदर्शन है । अपीलार्थी ने वादपत्रों में आगे यह प्रकथन भी किया है कि वह उक्त पण्य चिन्ह (ट्रेड मार्क) में आत्मसात कलात्मक विशेषताओं का स्वामी और कर्ता-धर्ता होने के कारण तारीख 19 मई, 2014 के रजिस्ट्रीकरण संख्या ए-110645/20 के अन्तर्गत उस पण्य चिन्ह में प्रतिलिप्याधिकार रखता है । इस बात पर जोर देते हुए कि वह उक्त पण्य चिन्ह में प्रतिलिप्याधिकार रखता है । इस बात पर जोर देते हुए कि वह उक्त पण्य चिन्ह लेबल में अन्तर्वलित लक्षण मूल प्रकृति के हैं, अपीलार्थी-वादी ने वादपत्र में आगे प्रकथन किया है कि वही 1957 के अधिनियम के अर्थान्तर्गत उसका एकमात्र स्वामी है । अपनी प्रतिष्ठा की चर्चा करते हुए अपीलार्थी-वादी ने दोनों वादपत्रों में अभिवाक् किया कि बाजार में उपरोक्त पण्य चिन्ह/लेबल के अन्तर्गत उसके उत्पाद ने जबरदस्त ख्याति और ईर्ष्यायोग्य प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है जिस कारणवश इस पण्य चिन्ह/लेबल के अन्तर्गत काफी बड़ा व्यापार स्थापित हो गया है ।

3. अपीलार्थी-वादी ने वादपत्रों में प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों को उनके द्वारा उनके माल प्लास्टर आफ पेरिस पर अपने पण्य चिन्ह/लेबल की नकल किए जाने और उनके माल पर समरूपता वाले लेबलों "हाई-टेक" और "आई-टेक", जिनमें से दोनों के द्वारा 1999 और 1957 के अधिनियमों का अतिक्रमण हुआ, का कपटपूर्वक प्रयोग किए जाने के लिए डपटा है । वादपत्रों में प्रत्यर्थियों के लेबलों में समरूपता पर जोर देते हुए यह अभिवचन किया गया कि दोनों ही पण्य चिन्हों के द्वारा अपीलार्थी-वादी के

पण्य चिन्ह लेबल की ज्यों का त्यों नकल समरूप लेबल, भवन के प्रदर्शन के समरूप तरीके के साथ रंगों के सुस्पष्ट सम्मिश्रण-हल्के हरे और नारंगी रंग के सम्मिश्रण का प्रयोग किए जाने के द्वारा की गई है । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के कार्यों और चूकों पर गंभीरतापूर्वक आपत्ति व्यक्त करते हुए वादपत्रों में यह अभिवचन भी किया है कि उनके द्वारा किए गए कार्य बेईमानीपूर्ण, असद्भावपूर्ण और कपटपूर्ण हैं । उनके द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि, अपीलार्थी-वादी का प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के माल की गुणवत्ता पर कोई नियंत्रण नहीं है और इसलिए रंगों के समन्वय के साथ लेबल की समग्र रूप से सादृश्यता और प्रत्यर्थियों के माल की पैकिंग करने वाले बोरों पर आकृतियों की बनावट और उनके विन्यास के कारण बाजार में अपीलार्थी की ख्याति और प्रतिष्ठा के नुकसान की कीमत पर भ्रान्ति और गलतफहमी की पूर्ण संभाव्यता है ।

अपीलार्थी ने इन सभी निश्चायक प्रकथनों के साथ दोनों वादपत्रों में प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध आज्ञापक स्वरूप में शाश्वत व्यादेश प्रदान किए जाने की प्रार्थना की ।

4. अपीलार्थी-वादी द्वारा फाइल किए गए वादों के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 नियम 1 और 2 सपठित धारा 151 के अधीन अस्थायी व्यादेश के आवेदन भी फाइल किए गए थे । अपीलार्थी ने वादपत्रों में किए गए सभी अभिकथनों को दोहराते हुए दोनों प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध उनके उत्पादों पर मिलते-जुलते हुए लेबल वाले पण्य चिन्हों का प्रयोग न किए जाने के लिए वादपत्रों के विनिश्चय के लिए लम्बित रहने के दौरान अस्थायी व्यादेश का आदेश पारित किए जाने की प्रार्थना की थी । अपीलार्थी ने अस्थायी व्यादेश के आवेदन में अपने पक्ष में प्रथमदृष्ट्या मामला साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपेक्षित तथ्यों का अभिवाक् किया और यह स्थापित करने का भी प्रयास किया कि अस्थायी व्यादेश का आदेश प्रदान किए जाने के लिए दो अन्य आवश्यक संघटक अर्थात् सुविधा का संतुलन और अपूर्णनीय क्षति वाले संघटक भी विद्यमान हैं ।

5. प्रत्यर्थी मैसर्स जगदम्बा प्लास्टर इंडस्ट्रीज ने अस्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए आवेदन का प्रतिवाद अपना उत्तर प्रस्तुत किए जाने के द्वारा किया जिसके द्वारा उन्होंने अस्थायी व्यादेश के आवेदन में समाविष्ट समस्त अभिकथनों से इनकार किया । उन्होंने अपने उत्तर में यह प्रकथन भी किया कि प्रत्यर्थी जिपसम और उसके सहायक उत्पादों के

कारबार में पिछले अनेक वर्षों से अन्तर्वलित है और उसके उत्पाद के पण्य चिन्ह "आई-टेक" ने बहुत ही कम समय में बाजार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है । उन्होंने अपने उत्तर में यह अभिवचन किया है कि अहमदाबाद के ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार ने उनके आवेदन पर विचारोपरान्त उनके पक्ष में प्रमाणपत्र जारी कर दिया है और इस प्रकार अपीलार्थी-वादी द्वारा आरम्भ की गई सम्पूर्ण कार्यवाही व्यक्तिगत प्रतिर्स्पद्धा के कारण विद्वेष से ग्रसित है । प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने इन सभी प्रकथनों के साथ अस्थायी व्यादेश के आवेदन को निरस्त किए जाने की प्रार्थना की है । मैसर्स जगदम्बा प्लास्टर इंडस्ट्रीज की ओर से फाइल किए गए उत्तर में सही राम का शपथपत्र संलग्न किया गया है ।

6. इसी प्रकार से प्रत्यर्थी-प्रतिवादी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज ने भी अपना उत्तर प्रस्तुत किए जाने के द्वारा अस्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए आवेदनों का विरोध किया । अपने उत्तर में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज ने अभिवाक् किया कि पण्य चिन्ह लेबल "हाई-टेक" एक सामान्य शब्द है जिसका सामान्यतः प्रयोग बहुत से व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और साथ ही गूगल की वेबसाइट प्रदर्शित करती है कि इस सामान्य शब्द का प्रयोग करने वालों की संख्या कुल मिलाकर 13,10,000 है । प्रत्यर्थी ने अपने उत्तर में यह प्रकथन भी किया है कि भारत में अनेक कम्पनियां, वाणिज्यिक प्रतिष्ठान, संगठन और संस्थाएं उक्त शब्द का प्रयोग बिना किसी व्यवधान के कर रहे हैं । प्रत्यर्थी ने यह प्रकथन भी किया है कि वह "हाई-टेक" पण्य चिन्ह का प्रयोग करने का विधिक रूप से हकदार है । उन्होंने आगे यह अभिवचन भी किया है कि समान प्रार्थना के साथ फाइल किए गए पूर्ववर्ती वाद, जिनके साथ अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन फाइल किए गए, में अस्थायी व्यादेश का आदेश पारित किए जाने से इनकार किए जाने पर अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की थी किन्तु वह खारिज कर दी गई और इसलिए अपीलार्थी व्यादेश प्रदान किए जाने का हकदार नहीं है ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने परस्पर विरोधी पक्षों की दलीलों को सुनने के पश्चात् एक ही आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अस्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए अपीलार्थी के दोनों आवेदनों को निरस्त कर दिया । मामले का परीक्षण किए जाने पर विद्वान् विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलार्थी अपने पक्ष में प्रथमदृष्ट्या मामला साबित कर पाने में असफल रहा है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या

मामले पर अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करते हुए अपीलार्थी द्वारा "चला देने" (Passing of action) की कार्यवाही और दोनों उत्पादों के नामों में धोखा देने वाली समरूपता (Deceptive Similarity) और साथ ही पण्य चिन्ह का पहले से किए जा रहे प्रयोग (Prior User of the Trade Mark) के तथ्य का सूक्ष्मतापूर्वक परीक्षण करने से इनकार yah मताभिव्यक्ति करते हुए कर दिया कि इन पहलुओं का न्यायनिर्णयन मुख्य वाद में परस्पर विरोधी पक्षों के साक्ष्य लिए जाने के पश्चात् किया जा सकता है । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज द्वारा किए गए निवेदनों से सहमति व्यक्त करते हुए प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष निकाला कि "हाई-टेक" एक सामान्य शब्द है । इसके अलावा, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि परस्पर विरोधी पक्षों के लेबलों के डिजाइन, उनके रंगों के समन्वय और पद्धति भी प्रथमदृष्ट्या भिन्न है और उनको धोखा देने वाली समरूपता नहीं कहा जा सकता । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या मामले के संबंध में अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करते हुए अपीलार्थी-वादी के विरुद्ध अस्थायी व्यादेश प्रदान किए जाने के लिए अन्य दोनों आवश्यक संघटकों पर भी अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए जो अस्थायी व्यादेश के लिए दोनों आवेदन अस्वीकृत किए जाने के लिए अंततः आवश्यक होते हैं ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल डा. अशोक सोनी ने दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय आक्षेपित आदेश पारित करते हुए दोनों ही वादों की विषय-वस्तु का परीक्षण सही परिप्रेक्ष में करने में बुरी तरह विफल रहा । अतः विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि आक्षेपित आदेश तर्क विरुद्ध है और विधि के स्थिरीकृत सिद्धांतों, जो अन्तर्वर्ती व्यादेशों को प्रदान किए जाने या उनको प्रदान किए जाने से इनकार किए जाने के प्रयोजनार्थ विधि को विनियमित करते हैं, का अनदेखा करते हुए पारित किया गया है । विद्वान् काउंसेल डा. सोनी ने निवेदन किया कि यद्यपि विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अन्तरिम व्यादेश प्रदान किया जाना या उसको प्रदान किए जाने से इनकार किया जाना प्रथम बार वाले न्यायालय का विशेषाधिकार है किन्तु जब न्यायालय ऐसे किसी विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से या स्वेच्छाचारिता के आधार पर करता है, जैसा कि हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले में किया गया है, तो अपील न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप अपेक्षित होता है । विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय अपीलार्थी के बौद्धिक संपदा अधिकारों का मूल्यांकन करने में विफल रहा है चूंकि जिप्सम

के उत्पाद के लिए पण्य चिन्ह और प्रतिलिप्याधिकार के रजिस्ट्रीकरण के बारे में आक्षेपित आदेश में बिल्कुल भी चर्चा नहीं की गई है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल डा. सोनी ने दलील दी कि प्रत्यर्थियों के लेबल चिन्ह अपीलार्थी के लेबल चिन्हों के धोखा देने वाली समरूपता वाले हैं और अपीलार्थी इस पण्य चिन्ह का पहले से प्रयोग करने वाला है, ये वे कुछ महत्वपूर्ण विवाद्यक हैं जिनको विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में संबोधित नहीं किया गया है और इनको इस प्रकार से छोड़ दिया है कि वे अपीलार्थी के हितों के लिए असुरक्षित हैं ।

9. विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील भी दी गई है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के हितों के प्रतिकूल सामान्य शब्द "हाई-टेक" पर अनुचित रूप से जोर दिया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने अस्थायी व्यादेश प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ दो अन्य आवश्यक संघटकों पर नाममात्र के लिए भी निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है; जो हैं सुविधा का संतुलन और अपूर्णनीय क्षति, इसलिए, आक्षेपित आदेश स्पष्टतः दोषपूर्ण हैं । डा. सोनी ने आगे दलील दी कि जब कोई व्यथित पक्ष 1999 और 1957 के अधिनियमों से उत्पन्न होने वाले बौद्धिक संपदा अधिकारों के अतिक्रमण के बाबत अभिकथन करता है, तो लोकप्रियता में नुकसान के अतिरिक्त भविष्य में गलत कार्य करने वाले पक्ष के हाथों होने वाली अधिसंभाव्य क्षति के लिए उसकी चिन्ता तात्विक होती है । किन्तु यह महत्वपूर्ण विवाद्यक जो इस मामले में महत्वपूर्ण है, पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है । अंततः, विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा जानबूझकर धोखा देने के लिए की गई समरूपता, रंगों के समन्वयन, लेबलों/चिन्हों पर आकृतियों की बनावट के अतिरिक्त विभिन्न निर्णयज विधियों में उल्लिखित विधिक प्रतिपादनाओं का पूर्णतया अनदेखा किया है ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने विभिन्न दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(1) **कविराज पंडित दुर्गादत्त शर्मा** बनाम **नवरत्न फार्मास्यूटीकल लेबोरेटीज**[1],

---

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 980.

(2) सीबा लिमिटेड बेस्ले, स्विटजरलैंड बनाम एम. रामालिंगम् और एस. सुब्रमणियम ट्रेडिंग इन दा नेम आफ साउथ इंडियन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, मदुरा और एक अन्य[1],

(3) टी. वी. वेणुगोपाल बनाम उसोदया इंटरप्राइजेज लिमिटेड और एक अन्य[2],

(4) इंडियन फरफारमिंग राईट्स सोसाइटी लिमिटेड बनाम संजय दलीया और अन्य[3],

(5) एस. सैय्यद मोहिदीन बनाम पी. सुलोचना बाई[4],

(6) लक्ष्मीकांत वी. पटेल बनाम चेतनभाई शाह और अन्य[5],

(7) हीन्ज इटेलिया और एक अन्य बनाम डाबर इंडिया लिमिटेड[6],

(8) पारले प्रोडक्ट्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम जे. पी. एण्ड कम्पनी, मैसूर[7],

(9) सोसाइटे डेस प्रोड्यूइट्स नैस्ले बनाम कांन्टिनेटल काफी लिमिटेड[8],

(10) कायरा डिस्ट्रिक्ट को-आपरेटिव मिल्क प्रोड्यूसर्स यूनियन लिमिटेड बनाम भारत कान्फेक्शनरी वर्क्स (रजि.)[9],

(11) मेसर होल्डिंग्स लिमिटेड बनाम श्याममदनमोहन रुईया और अन्य[10],

(12) रमेश चन्द्र पालीवाल बनाम सीमा एण्ड कम्पनी[11],

---

[1] ए. आई. आर. 1958 बाम्बे 56 (डी. बी.).
[2] (2011) 4 एस. सी. सी. 85 = 2011 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1742.
[3] (2015) 10 एस. सी. सी. 161 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3479.
[4] (2016) 2 एस. सी. सी. 683.
[5] (2002) 3 एस. सी. सी. 65 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 275.
[6] (2007) 6 एस. सी. सी. 1 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3615.
[7] (1972) 1 एस. सी. सी. 618.
[8] 2012 (49) पी. टी. सी. 46 (दिल्ली).
[9] पी. टी. सी. (सप्ली.) (1) 615 (दिल्ली).
[10] (2016) 11 एस. सी. सी. 484 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1948.
[11] 2017 (70) पी. टी. सी. 293 (राज.).

(13) **मैसर्स पंडित कुल्फी एण्ड कैफे** बनाम **मैसर्स पंडित कुल्फी**[1],

(14) **महेश्वरी टी कम्पनी** बनाम **विजय एजेन्सी**[2],

(15) **सबको इंडस्ट्रीज** बनाम **केवल एमर्स**[3],

(16) **बंगाल वाटरप्रूफ लिमिटेड** बनाम **बाम्बे वाटरप्रूफ मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी और एक अन्य**[4] ।

11. इसके विपरीत प्रत्यर्थी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज के विद्वान् काउंसेल श्री राजीव पुरोहित ने निवेदन किया कि अभिव्यक्ति "हाई-टेक" एक सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग बहुत सी कंपनियों, वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों, संगठनों और संस्थाओं द्वारा किया जाता है और इसलिए उसको सामान्यतः धोखा देने वाली समरूपता वाला चिन्ह नहीं माना जा सकता । विद्वान् काउंसेल श्री पुरोहित ने दलील दी कि प्रत्यर्थी अपने उत्पाद को प्रोन्नत करने के प्रयोजनार्थ उपसर्ग "हाई-टेक" के साथ लेबल का प्रयोग कर रहे हैं और इसलिए वह अपीलार्थी के पण्य चिन्ह से भिन्न और पृथक् है । विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित आदेश का श्रमसाध्यतापूर्वक बचाव करते हुए दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विवेकाधिकार के आधार पर पारित किए गए आदेश में निश्चित रूप से किसी मध्यक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं होती । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील भी दी गई कि अन्तर्वर्ती व्यादेश प्रदान किया जाना या उससे इनकार किया जाना प्रथम बार के न्यायालय की अनन्य अधिकारिता और विशेषाधिकार के अन्तर्गत होने के कारण अपीली न्यायालय द्वारा उसमें नियमित तरीके से समाविष्ट विचार को प्रतिस्थापित किए जाने के द्वारा कोई मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं होता । विद्वान् काउंसेल श्री पुरोहित ने आगे दलील दी कि पहले अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध इसी प्रकार के अनुतोष के लिए सिविल वाद फाइल किया गया था और अन्तर्वर्ती व्यादेश के लिए भी प्रार्थना की गई थी किन्तु विचारण न्यायालय द्वारा इससे इनकार कर दिया गया और उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील को भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया जिससे यह

---

[1] ए. आई. आर. 2015 राज. 218.

[2] 2016 (67) पी. टी. सी. 116 (राज.).

[3] 2007 (35) पी. टी. सी. 533 (राज.).

[4] (1997) 1 एस. सी. सी. 99 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1398.

पर्याप्त रूप से दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी अपने माल के संदर्भ में इस चिन्ह/लेबल का प्रयोग पिछले लगभग पांच वर्षों से बिना किसी व्यवधान के कर रहा है, इसलिए अपीलार्थी साम्यापूर्ण विचारण के आधार पर भी अन्तरिम व्यादेश का हकदार नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने इस संबंध में अपने निवेदनों को विस्तृत करते हुए दलील दी कि यद्यपि अपीलार्थी ने नया वाद फाइल करने की स्वतंत्रता के साथ इस वाद को वापस ले लिया है किन्तु फिर भी इस मामले में साम्यापूर्ण अनुतोष जैसे कि अस्थायी व्यादेश प्रदान किए जाने के मामले में समय का व्यतीत हो जाना महत्वपूर्ण है ।

12. श्री पुरोहित ने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी के पास चिन्ह/लेबल के लिए प्रतिलिप्याधिकार का रजिस्ट्रीकरण है जो प्रतिलिप्याधिकार के रजिस्ट्रार द्वारा तारीख 9 अगस्त, 2015 को प्रदान किया गया था और उक्त आदेश 1957 के अधिनियम की धारा 72 के अधीन अपील योग्य है, इसलिए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया वाद 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41(ज) को दृष्टि में रखते हुए पोषणीय नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि जब अपीलार्थी को प्रत्यर्थी के प्रतिलिप्याधिकार रजिस्ट्रीकरण के विरुद्ध समान रूप से प्रभावी अनुतोष उपलब्ध है, तो वाद की पोषणीयता स्वयमेव ही संदेह के घेरे में है और इसलिए अस्थायी व्यादेश प्रदान किए जाने के लिए की गई प्रार्थना मंजूर किए जाने योग्य नहीं है । विद्वान् काउंसेल श्री पुरोहित ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 नियम 3 का भी अवलंब लिया और दलील दी कि अपीलार्थी का वाद वाद-कारण के दुस्संयोजन के कारण पोषणीय नहीं है क्योंकि 1999 और 1957 के अधिनियमों के अतिलंघन की संयुक्त रूप से शिकायत करने वाला सम्मिश्रित वाद फाइल नहीं किया जा सका । अतः, उन्होंने निवेदन किया कि इस पृष्ठभूमि में विद्वान् विचारण न्यायालय के वैवेकिक आदेश में मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता ।

13. अंततः, विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा चिन्ह/लेबल "हाई-टेक" के प्रयोग के कारण अपीलार्थी को कोई हानि या असुविधा नहीं पहुंची है और इसलिए इस मामले में अन्य दो आवश्यक संघटक अर्थात् सुविधा का संतुलन और अपूर्णनीय क्षति स्पष्टतया अविद्यमान है, जो प्रस्तुत अपील को अस्वीकार किए जाने के लिए पर्याप्त है । विद्वान् काउंसेल श्री पुरोहित ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब

लिया :–

(1) **स्काइलाइन एजुकेशन इन्स्टीट्यूट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **एस. एल. वासवानी और अन्य**[1],

(2) **ढोढा हाउस** बनाम **एस. के. मैंगी**[2],

(3) **डाबर इंडिया लिमिटेड** बनाम **के. आर. इंडस्ट्रीज**[3],

(4) **मोहन लाल, प्रोपराइटर आफ मौर्या इंडस्ट्रीज** बनाम **सोना पेंट एण्ड हार्डवेयर**[4] ।

14. प्रत्यर्थी मैसर्स जगदम्बा प्लास्टर के विद्वान् काउंसेल श्री आर. सी. जोशी ने लगभग उन्हीं दलीलों को दोहराया जो श्री राजीव पुरोहित द्वारा दी गई थीं । तत्पश्चात् अपनी दलीलों को आगे बढ़ाते हुए श्री जोशी ने दलील दी कि प्रत्यर्थी के लेबल/चिन्ह "आई-टेक" को किसी भी प्रकार से अपीलार्थी के पण्य चिन्ह के समरूप नहीं माना जा सकता । श्री जोशी ने आगे दलील दी कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील कि प्रत्यर्थी के चिन्ह/लेबल पण्य चिन्ह "हाई-टेक" धोखा देने वाली समरूपता वाला है और इसलिए विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता, अतः आक्षेपित आदेश में किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

15. मैंने, अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर सोच-समझकर विचार किया और आक्षेपित आदेश और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

16. इन अपीलों में जिस प्रश्न पर विचार किए जाने की ईप्सा की गई है, वह अपीलार्थी के अभिकथित रूप से बौद्धिक संपदा अधिकारों के अतिलंघन/अतिक्रमण से संबंधित है जो 1999 और 1957 के अधिनियमों से उत्पन्न होते हैं । इसके अतिरिक्त, न्यायालय से यह अपेक्षा भी की गई है कि वह अपनी अपीली अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश की वैधता और न्यायोचित्य का परीक्षण करे और इस प्रकार यह अपील नियमित प्रथम अपील के सदृश्य नहीं है बल्कि सिद्धांत के विनिर्धारण के लिए फाइल की गई अपील है । निर्विवाद रूप से अन्तर्वर्ती व्यादेश का

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 142 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3221.

[2] (2006) 9 एस. सी. सी. 41 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 730.

[3] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 3123.

[4] ए. आई. आर. 2013 दिल्ली 143.

प्रदान किया जाना या उसको प्रदान करने से इनकार किया जाना प्रथम बार वाले न्यायालय के विवेकाधिकार के अन्तर्गत होता है और उस विवेकाधिकार में मध्यक्षेप करने की अपीली न्यायालय की शक्ति अत्यधिक सीमित होती है ।

17. संक्षेप में, दोनों वादों में अपीलार्थी की शिकायत इस विनिर्दिष्ट अभिकथन पर आधारित है कि प्रत्यर्थी जिन चिन्हों/लेबलों का प्रयोग कर रहे हैं वे अपीलार्थी के चिन्हों/लेबलों के धोखा देने वाली सीमा तक समरूप हैं । अपीलार्थी का यह प्रयास है कि अपने नाम में रजिस्ट्रीकृत "हाई-टेक" के पण्य चिन्ह और उसी के प्रतिलिप्याधिकार पर जोर देते हुए प्रत्यर्थियों द्वारा वाणिज्यिक बेईमानी को रोका जाए । प्रत्यर्थी निश्चित रूप से अपीलार्थी से उसके "हाई-टेक" के पण्य चिन्ह और प्रतिलिप्याधिकार के रजिस्ट्रेशन के बाबत सहमत हैं किन्तु उन्होंने उनकी वाणिज्यिक बेईमानी के संबंध में अपीलार्थी के आरोपों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया । आरम्भ में ही, उत्पाद के व्यापारिक नाम के साथ चिन्ह/लेबल, रंगों के समन्वय और अन्य लक्षणों का परीक्षण किए जाने पर मुझको यह कहते हुए अफसोस हो रहा है कि प्रत्यर्थी मैसर्स जगदम्बा प्लास्टर द्वारा उनके उत्पादों और माल पर प्रयुक्त अभिव्यक्ति "आई-टेक" अपीलार्थी के लेबल पण्य चिन्ह के समरूप प्रतीत नहीं होते । जबकि यह सत्य है कि दोनों लेबलों/पण्य चिन्हों के रंगों के समन्वय समरूप हैं किन्तु अन्य लक्षण सुभिन्नतः समरूप नहीं हैं । दोनों ही लेबल पण्य चिन्हों के डिजाइन, शैली, प्रदर्शन और लक्षणों की क्रमबद्धता में पूर्णतः फेरफार है ।

18. महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी का लेबल/पण्य चिन्ह अपीलार्थी के पण्य चिन्ह के मुकाबले धोखा देने वाली समरूपता रखता है या यह ग्राहकों के मध्य "भ्रम की संभाव्यता" को सृजित करने का एक सकारात्मक प्रयास है । अपीलार्थी द्वारा यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि प्रत्यर्थी के लेबल/पण्य चिन्ह के कारण "भ्रम की संभाव्यता" सृजित हो गई है । यह सत्य है कि न्यायालय "भ्रम की संभाव्यता" पर न्यायनिर्णयन करते हुए उसको भ्रमपूर्ण या अविश्वसनीय कहते हुए उससे तत्काल रूप से इनकार नहीं कर सकता किन्तु तत्पश्चात् आधुनिक तकनीकी के प्रादुर्भाव के साथ "भ्रम की संभाव्यता" वाद फाइल करने वाले पर उच्चतर अवसीमा के अधिरोपण का सुझाव देती है । इसलिए, मुझे भय है कि मेरे समक्ष उपस्थित मामले के विलक्षण तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में

अपीलार्थी-वादी का प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध "चला देने की कार्यवाही" का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, मेरे विचार में एकल रंग के प्रयोग को अन्तर्निहित रूप से सुभिन्न रंग के रूप में नहीं माना जा सकता जिसके आधार पर प्रत्यर्थी को वाणिज्यिक बेईमानी के लिए प्रथमदृष्ट्या दंडित किया जा सके । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या मामले पर नकारात्मक निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, मामले के इस पहलू को संबोधित करने का गंभीरतापूर्वक प्रयास किया, इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती ।

19. अब अन्य प्रत्यर्थी मैसर्स राज प्लास्टर इंडस्ट्रीज के लेबल पण्य चिन्ह पर विचार करते हैं, यह मताभिव्यक्ति किया जाना पर्याप्त होगा कि इस लेबल पण्य चिन्ह के प्रयोजनार्थ अभिव्यक्ति "हाई-टेक" का प्रयोग किया गया है जो अपीलार्थी के लेबल पण्य चिन्ह "हाई-टेक" के नितांन्त रूप से समरूप है । इसके अतिरिक्त, अभिन्यास, रंगों का संयोजन और अन्य लक्षण भी उक्त लेबल पण्य चिन्ह में कुछ न कुछ समरूपता रखते हैं । चाहे कुछ भी हो, प्रथम दृष्ट्या यह समझा जाना निश्चित रूप से कठिन होगा कि प्रत्यर्थी का लेबल पण्य चिन्ह अपीलार्थी के लेबल पण्य चिन्ह के मुकाबले धोखा देने वाली समरूपता रखता है । इसलिए, यह प्रश्न कि इसके कारण अपीलार्थी के उत्पाद के संबंध में ग्राहकों के मध्य भ्रम उत्पन्न होने की संभाव्यता है, अपीलार्थी-वादी द्वारा प्रस्तुत की गई तर्कपूर्ण सामग्री के आभाव में इस प्रक्रम पर इस बात की कल्पना किया जाना निश्चित रूप से कठिन होगा । लभगभ 5 वर्ष की अवधि के व्यतीत हो जाने के कारण और उपलब्ध आंकडों के आधार पर कि अपीलार्थी ने ख्याति और साथ ही धन संबंधी हानि को बर्दाश्त किया है, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी की ख्याति का नुकसान करते हुए अपने माल/उत्पाद का विक्रय प्रोन्नत किया है ।

20. इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि जब कोई पक्ष अपने बौद्धिक संपदा अधिकारों के अतिलंघन की शिकायत करता है, तो वह किसी विनिर्दिष्ट अधिकार या हित की भविष्य में अधिसंभाव्य हानि के लिए साम्यापूर्ण अनुतोष की ईप्सा करते हुए आशंकाओं पर आधारित विधिक सिद्धांत का अवलंब लेने का हकदार होता है किन्तु यहां पर साम्या सतर्क व्यक्ति का साथ देती है और न कि अकर्मण्य व्यक्ति का । चूंकि प्रत्यर्थी के विरुद्ध पिछले लगभग 5 वर्षों से कोई निषेधादेश नहीं था और विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर विचार करते हुए, अपीलार्थी को कोई

भी साम्यापूर्ण अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया है; मैं इस पहलू पर आक्षेपित आदेश में कोई शिथिलता नहीं पाता । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर भविष्य में होने वाली पूर्वानुमान पर आधारित किसी भी हानि के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है और जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा न्यायतः मताभिव्यक्ति की गई है, इसका अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन केवल वाद के पूर्णरूप से विचारण के पश्चात् ही किया जा सकता है ।

21. उच्चतम न्यायालय ने **टोयटा जिदोशा काबूशिकी कायशा** बनाम **प्रायस आटो इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए अपने नवीनतम निर्णय, यद्यपि यह निर्णय भिन्न संदर्भ में पारित किया गया था और वादी के न्यायालय की शरण में विलम्ब से आने के कारण उसके अनुकूल नहीं है, में मताभिव्यक्ति की गई कि वादी को प्रतिवादी पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्यों के द्वारा अनुचित विलम्ब और चूकें करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । वर्तमान मामलों में अपीलार्थी/वादी ने पहले भी दो पृथक्-पृथक् वाद प्रत्यर्थियों के विरुद्ध वर्ष 2013 में फाइल किए थे, जिनको किन्हीं कारणोंवश नया वाद फाइल करने की स्वतंत्रता के साथ तारीख 29 मार्च, 2016 को वापस ले लिया गया था और इन दोनों वादों के लम्बन के दौरान कोई व्यादेश प्रभावी नहीं था । वास्तविकता यह है कि इन दोनों ही वादों में विद्वान् विचारण न्यायालय ने अस्थायी व्यादेश की प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और तत्पश्चात् उन आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई अपील को भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । यद्यपि यह सत्य है कि अपीलार्थी ने पूर्ववर्ती वादों को वापस लेने के लिए विद्वान् विचारण न्यायालय से नया वाद फाइल करने की स्वतंत्रता ले ली थी और तत्पश्चात् नए वाद फाइल कर दिए थे किन्तु नए वाद फाइल किए जाने के लिए अपीलार्थी-वादी की ओर से की गई विलम्बित कार्यवाही की बाबत कोई तर्कपूर्ण स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया । यद्यपि अपीलार्थी-वादी ने निरन्तर चलने वाला वाद कारण दर्शित किया है किन्तु प्रथम वाद कारण अक्तूबर, 2013 का है जो अपीलार्थी द्वारा पर्याप्त रूप से विलम्बित वाद कारण दर्शित करता है, इसलिए, इस संदर्भ में उच्च न्यायालय द्वारा **टोयटा जिदोशा काबूशिकी कायशा** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है और जिसको नीचे उद्धृत किया गया है :–

---

[1] ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 167.

"यदि वादी द्वारा (भारत में) किसी विनिर्दिष्ट अधिकारिता (क्षेत्र में) ख्याति या प्रतिष्ठा स्थापित नहीं की गई है, तो निश्चित रूप से चला देने की कार्यवाही जो उसने प्रतिवादियों के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में आरम्भ की थीं, में वादी के अधिकार की सीमा को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी अन्य विवाद्यक के परीक्षण की आवश्यकता नहीं है । परिणामस्वरूप यदि हम 'प्रयास' चिन्ह की उत्पत्ति के बाबत प्रतिवादी के पक्षकथन को स्वीकार करने में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए मत से असहमत हैं, तो खंड न्यायपीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष मान्य ठहराए जाएंगे । हम इसमें कोई सहायता नहीं कर सकते किन्तु हम यह मताभिव्यक्ति करते हैं कि वादी द्वारा न्यायालय की शरण में जाने में किए गए विलम्ब का कोई स्पष्टीकरण नहीं है । ऐसे विलम्ब को प्रतिवादियों, जिन्होंने वादी द्वारा मौन धारण किए जाने की असामान्य रूप से लम्बी अवधि के दौरान अपने माल के बाजार में विपणन हेतु अपने रजिस्ट्रीकृत चिन्ह का प्रयोग निरन्तर रूप से किया है, पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के प्रयोजनार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता ।"

22. जैसी कि ऊपर मताभिव्यक्ति की गई है, किसी लेबल/पण्य चिन्ह का रंग प्रथमदृष्ट्या धोखा देने वाली समरूपता को अभिनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी का अनन्य अधिकार नहीं हो सकता और इस प्रकार अन्य पहलुओं अर्थात् लक्षणों का क्रमबंधन, डिजाइन, अभिन्यास और लोगो का तरीका से इनकार नहीं किया जा सकता । अपेक्षित सामग्री के अभाव में दोनों लेबलों/पण्य चिन्हों का परीक्षण किए जाने पर इस प्रक्रम पर यह कहना कठिन है कि ग्राहकों के मध्य "भ्रम की संभाव्यता" का अनुमान लगाया जा सके और "मुकदमे के दौरान" वाले सिद्धांत का अवलंब लिया जा सके ।

23. प्रत्यर्थी का यह आक्षेप कि अभिव्यक्ति "हाई-टेक" सामान्य शब्द है, का भी अनदेखा न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता । यह एक निर्विवाद तथ्य है कि शब्द "हाई-टेक" का प्रयोग भारत में अनेक कम्पनियों, कारबार प्रतिष्ठानों और संगठनों द्वारा किया जाता है न कि जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है । यह सत्य है कि सामान्य शब्द का अर्थान्वयन सभी समस्याओं के हल के रूप में नहीं किया जा सकता यदि गलत कार्य करने वाले पक्ष की धोखाधड़ी वाली कार्यवाही या अनुचित व्यापार पद्धति अनुमार्गणीय हो । इसलिए, वाद फाइल करने वाले पक्ष के

साथ साम्यापूर्ण न्याय किए जाने के लिए और प्रतिवादी के विरुद्ध निषेधादेश पारित किए जाने के लिए बेईमानीपूर्ण आशय और बुरी नियत के साथ समरूप शब्द या शब्दों का प्रयोग पूर्व शर्त है ।

उच्चतम न्यायालय ने **टी. वी. वेणुगोपाल** (उपरोक्त) वाले मामले में सामान्य शब्द पर विचार करते हुए निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "प्रतिवादी की दलील यह है कि विशेषण सामान्यतः धोखा देने वाले शब्द होते हैं । तथापि, मैकारथी ने कहा कि (21 का 17) [2017 की सी. एम. ए. संख्या 1097] उक्त 'शब्द के भेद' का परीक्षण निर्णयज्ञ विधि के परिणामों का ठीक-ठीक वर्णन नहीं करता और इसलिए ऐसे किसी मापदंड को यह अभिनिश्चित किए जाने के लिए सुरक्षित और विश्वस्त आधार की भांति स्वीकार नहीं किया जा सकता कोई विशिष्ट नाम सामान्य प्रकृति का है या धोखा देने वाली प्रकृति का । इसके अतिरिक्त, यह उपधारणा करते हुए भी कि उक्त शब्द सामान्य है, फिर भी यदि न्यायालय द्वारा यह पाया जाता है कि इस प्रकार के किसी शब्द में सुभिन्नता प्राप्त कर ली है और पर्याप्त समय से वादी के कारबार के साथ सहबद्ध है और तत्पश्चात् किसी अन्य समरूप शब्द को भोले-भाले इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं को धोखे से प्रतिवादी की वैबसाइट पर आने के प्रयोजनार्थ अपने दो चिन्हों में से किसी एक चिन्ह के रूप में अंगीकृत कर लेता है जो उसके बेईमानीपूर्ण आशय और बदनीयती को स्थापित कर देती है, तो क्या न्यायालय तब भी वादी के कारबार को संरक्षित करने के लिए व्यादेश प्रदान नहीं करेगा ? उक्त प्रश्न का उत्तर सुस्पष्टतः 'नहीं' होना चाहिए । बेईमानीपूर्ण आशय के साथ जुड़े हुए किसी प्रतियोगी द्वारा समान शब्द का प्रयोग न्यायालय को ऐसे प्रयोगकर्ता/दुष्प्रयोगकर्ता को निषेधित किए जाने और व्यथित पक्ष के साथ साम्यापूर्ण न्याय करने के लिए सशक्त करता है ।"

उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रत्यर्थी का बेईमानीपूर्ण आशय या उसकी बदनीयती प्रथमदृष्ट्या दृष्टिगोचित नहीं होती । अतः **टी. वी. वेणुगोपाल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय स्पष्टतः महत्वपूर्ण हो जाता है ।

24. इस प्रक्रम पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **स्काईलाइन एजुकेशन इंस्टीट्यूट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में

तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना उचित होगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में सामान्य शब्द "स्काईलाइन" पर विचार किया और तत्पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया :–

> "हमारे विचार में, विद्वान् एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों जैसे कि प्रथमदृष्ट्या मामला, सुविधा का संतुलन और साम्या पर अभिलिखित निष्कर्ष मामले के विभिन्न पहलुओं पर सही और संतुलित विचारण पर आधारित हैं और उनके द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों से यह मामला प्रत्यर्थियों को उनके द्वारा स्थापित संस्था के नाम में शब्द 'स्काईलाइन' के प्रयोग से निषेधित किए जाने के लिए उचित मामला नहीं है, में किसी भी त्रुटि का निकाला जाना संभव नहीं है । अपीलार्थियों द्वारा इस बाबत कोई विवाद नहीं किया गया है कि शब्द 'स्काईलाइन' का प्रयोग विभिन्न कम्पनियों/संगठनों/कारबार समुत्थानों द्वारा और विभिन्न प्रकार की संस्था/संस्थाओं को वर्णित किए जाने के लिए किया जा रहा है । इस न्यायालय के समक्ष विभिन्न प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत किए गए भारी भरकम अभिलेख से यह दर्शित होता है कि भारत में कम्प्यूटर और साफ्टवेयर कम्पनियों और संस्थाओं को सम्मिलित करते हुए, लगभग 117 कम्पनियां अपने नाम/नामपद्धति में शब्द 'स्काईलाइन' का प्रयोग करते हुए कार्य कर रही हैं । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कम से कम 10 शैक्षणिक/प्रशिक्षण संस्थाएं शब्द 'स्काईलाइन' का प्रयोग प्रथम शब्द के रूप मे करते हुए विभिन्न नामों से कार्य कर रही हैं । ब्रिटेन में भी इस नाम से दो संस्थाएं कार्यरत हैं । इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह संभव नहीं है कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल से इस बाबत सहमति व्यक्त की जाए कि 'स्काईलाइन' एक सामान्य शब्द नहीं है बल्कि यह एक विनिर्दिष्ट शब्द है बल्कि उसके मुवक्किल को अधिकार है कि वह इस शब्द का प्रयोग अन्य लोगों को अपवर्जित करते हुए करे ।"

25. ऊपरवर्णित कुछ विनिश्चयों, जिनका अवलंब अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपने निवेदनों को अलंकृत करने के प्रयोजनार्थ लिया गया, का मेरे द्वारा सतर्कतापूर्वक परिशीलन अन्तर्वलित मुकदमे के प्रकाश में किया गया । मैं इस प्रक्रम पर उन निर्णयज विधियों में प्रतिपादित विधिक प्रतिपादनाओं का दृढ़तापूर्वक अवलंब लेते हुए उन पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने में अनिच्छुक महसूस करता हूं । तथापि, इन दोनों अपीलों के

तथ्यात्मक परिदृश्य की पृष्ठभूमि में निर्णयज विधियां स्पष्टतः विशेषणीय हैं और इसलिए, अपीलार्थी के वादकारण में उसकी कोई सहायता नहीं करती । यदि आक्षेपित आदेश की दोषपूर्णता, जिसको अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अनाड़ी की भांति की गई प्रशंसा द्वारा संतुलित करने की ईप्सा की गई, का निष्पक्ष दृष्टि से परीक्षण किया जाता है, तो भी यह संभव नहीं है कि आक्षेपित आदेश में किसी शिथिलता को पाया जा सके । व्यादेश का अनुतोष साम्यापूर्ण अनुतोष होने के कारण निश्चित रूप से किसी व्यथित पक्ष को उसके विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए और "आशंकाओं" के सिद्धांत पर आधारित बौद्धिक संपदा अधिकार को संरक्षित किए जाने के लिए भी उपलब्ध होता है किन्तु कारबार में एकाधिकार सृजित किए जाने और साथ ही दूसरों के कारबार को जोखिम में डालने की कीमत पर उपलब्ध नहीं होता है ।

26. अब मैं अन्तर्वर्ती व्यादेश प्रदान किए जाने या प्रदान किए जाने से इनकार करने वाले आदेश के विरुद्ध फाइल की गई किसी अपील में न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि और गुंजाइश का परीक्षण करुंगा । इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1 के अधीन फाइल की गई अपील नियमित प्रथम अपील के सदृश्य नहीं होती है और यह निश्चित रूप से सिद्धांतों पर आधारित अपील होती है । इन अपीलों में न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि अत्यंत सीमित होती है और अपील न्यायालय विचारण न्यायालय के विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता और उनके विवेकाधिकार को अपने विवेकाधिकार से प्रतिस्थापित नहीं कर सकता चाहे दो विचार समान रूप से संभव ही क्यों न हों । अपील न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप केवल तब अपेक्षित होता है जब निचले न्यायालय ने मनमाने ढंग से या तर्क विरुद्ध ढंग से, स्वेच्छाचारिता के आधार पर या विधिक सिद्धांतों के विरुद्ध या सुसंगत अभिलेख पर विचार किए बिना कार्य किया है ।

27. मेरे विचार की पुष्टि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **वांडर लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **एंटोक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से होती है जिसमें माननीय न्यायालय ने बौद्धिक संपदा अधिकारों के तथाकथित अतिक्रमण पर आधारित वाद में स्थायी व्यादेश प्रदान किए जाने वाले या उससे इनकार करने वाले आदेश

[1] (1990) (सप्ली.) एस. सी. सी. 727.

से संबंधित प्रश्न का परीक्षण करते हुए अभिनिर्धारित किया :—

> "ऐसी अपीलों में अपीली न्यायालय प्रथम बार वाले न्यायालय के विवेकाधिकार के प्रयोग में मध्यक्षेप नहीं करेगा और अपने विवेकाधिकार को तब तक प्रतिस्थापित नहीं करेगा जब तक कि विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से, तर्क विरुद्ध ढंग से या स्वेच्छाचारिता के आधार पर न किया गया हो या जहां न्यायालय ने अन्तर्वर्ती व्यादेशों को प्रदान किए जाने या उससे इनकार की जाने वाली विधि के स्थिरीकृत सिद्धांतों का अनदेखा किया हो । विवेकाधिकार के प्रयोग के विरुद्ध अपील सिद्धांतों पर आधारित होती है । अपील न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का पुनर्मूल्याकंन नहीं करेगा और निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से भिन्न निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा यदि निचले न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर तर्कसंगत प्रतीत होता हो । सामान्यतः अपील न्यायालय द्वारा अपील के अधीन विवेकाधिकार के प्रयोग में मध्यक्षेप मात्र इस आधार पर न्यायसंगत नहीं होगा कि यदि उसने विचारण के प्रक्रम पर मामले पर विचार किया है और विपरीत निष्कर्ष निकाला है । यदि विचारण न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेकाधिकार तर्कसंगत है और न्यायिक रीति में पारित किया गया है, तो यह तथ्य कि अपील न्यायालय ने भिन्न मत व्यक्त किया है, विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय में मध्यक्षेप को न्यायसंगत नहीं ठहराएगा ।"

28. इसी प्रकार से, **केडिला हेल्थ केयर लिमिटेड** बनाम **केडिला फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित विवेकाधिकार वाले आदेश, जिसके द्वारा व्यादेश प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया, में मध्यक्षेप करने से इनकार कर दिया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे पण्य चिन्ह विधि के अतिक्रमण के मामलों में, औषधीय उत्पादों और गैर-औषधीय उत्पादों के मध्य विभेद किया और यह मताभिव्यक्ति की :—

> "यद्यपि, अपीलार्थियों ने सही दलील दी है कि जहां औषधीय उत्पाद अन्तर्वलित होते हैं, पण्य चिन्ह विधि के अतिक्रमण का

[1] (2001) 5 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1952.

न्यायनिर्णयन किए जाने के प्रयोजनार्थ जो परीक्षण लागू किया जाना चाहिए, वह गैर-औषधीय उत्पादों को अन्तर्वलित करने वाले मामलों के सदृश नहीं हो सकता । उपभोक्ता द्वारा किसी अन्य औषधीय उत्पाद के भ्रम की संभाव्यता का न्यायनिर्णयन किए जाने की संभाव्यता के प्रयोजनार्थ कड़ा दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए । जबकि गैर औषधीय उत्पादों के मामलों में भ्रम की स्थिति वादी को आर्थिक हानि कारित कर सकती है, दो औषधीय उत्पादों के मध्य भ्रम की स्थिति स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है । और कुछ मामलों में जीवन पर भी विशेष रूप से जहां औषधियां अंतिम अभिप्रायः की औषधियां हों, कड़े उपाय अपनाए जाने चाहिए चूंकि ऐसी औषधियों के मामलों में भ्रम की स्थिति प्राणांतक हो सकती है या विनाशकारी प्रभाव वाली हो सकती है । उत्पादन की पहचान के संबंध में भ्रम लोक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव वाला हो सकता है ।"

स्काईलाइन एजुकेशन इंस्टीट्यूट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती विचार को दोहराया और अभिनिर्धारित किया :–

"ऊपरवर्णित विनिश्चयों का विनिश्चयानुपात यह है कि यदि एक बार प्रथम बार वाला न्यायालय अन्तरिम व्यादेश का अनुतोष प्रदान किए जाने या उसको प्रदान किए जाने से इनकार किए जाने के विशेषाधिकार का प्रयोग करता है और विशेषाधिकार का उक्त प्रयोग न्यायालय के समक्ष उपस्थित सामग्री के सकारात्मक विचारण पर आधारित और तर्कपूर्ण कारणों द्वारा समर्थित होता है, तो अपील न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप किया जाना उचित होगा क्योंकि मामले के विचारण पर अपील न्यायालय के लिए यह संभव होगा कि वह प्रथमदृष्ट्या मामले, सुविधा के संतुलन और अपूर्णनीय क्षति और साम्या के विवाद्यकों पर भिन्न राय व्यक्त कर सके ।"

29. इसलिए, मैं आक्षेपित आदेश का परीक्षण करने के उपरान्त दोनों अपीलों में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1 के अधीन प्रतिष्ठापित अपीली अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनार्थ विधि और तथ्यों की चूक और वह भी प्रकट चूक पाने में असमर्थ हूं । तथापि, दोनों ही वादों में 1999 और 1957 के अधिनियमों के अभिकथित अतिक्रमण के बारे में अन्तर्वलित वाद और चला देने की कार्यवाही पर विचार करते हुए, मैं वाद के शीघ्र निस्तारण सुनिश्चित करना चाहता हूं ।

30. उपरोक्त चर्चा का मुख्य बिन्दु यह है कि ये दोनों अपीलें विफल होती हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वे वादों में शीघ्र विचारण को सुनिश्चित करें और उनको यथासंभव शीघ्रतापूर्वक समाप्त करें । यह स्पष्ट किया जाता है कि इन अपीलों में अभिलिखित तथ्यों के निष्कर्ष मात्र अस्थायी व्यादेश के प्रयोजनार्थ हैं और इसलिए उक्त निष्कर्ष मुख्य वादों के अंतिम निष्कर्ष पर कोई प्रभाव नहीं रखेंगे । विद्वान् विचारण न्यायालय मुख्य वादों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर पारित इस निर्णय में की गई मताभिव्यक्ति द्वारा प्रभावित हुए बिना शीघ्रातिशीघ्र निर्णीत कर सकता है ।

31. मैं, इस मामले को समाप्त करने के पूर्व परस्पर विरोधी पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेलों डा. अशोक सोनी, श्री राजीव पुरोहित और श्री आर. सी. जोशी की प्रशंसा उनके द्वारा दी गई अमूल्य सहायता के लिए अभिलिखित करना चाहता हूं ।

अपील खारिज की गई ।

अवि.

(2018) 1 सि. नि. प. 751　　हिमाचल प्रदेश

कुनाल रनावत

बनाम

रविता जहान रनावत

तारीख 17 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति चन्द्र भूषण बरोवालिया

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 तथा संविधान, 1950 का अनुच्छेद 142] – आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी – छह मास की उपशमन अवधि की कानूनी अपेक्षा – पक्षकारों द्वारा विचारण न्यायालय से उक्त कानूनी अवधि को त्यक्त करके विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए अनुरोध – विधिमान्यता – अधिनियम के अधीन उक्त छह मास की प्रतीक्षा अवधि को केवल उच्चतम

न्यायालय द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग में त्यक्त किया जा सकता है न कि निचले न्यायालयों या उच्च न्यायालय द्वारा ।

याचियों/आवेदकों द्वारा वर्तमान याचिकाएं 2017 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 73-6 में तारीख 18 मार्च, 2017 को पारित आदेश तथा 2017 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 47-6 में तारीख 27 फरवरी, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई हैं जिनमें 6 मास की उपशमन अवधि याचियों के लिए मंजूर की गई थी और मामले में आपसी सहमति के साथ विवाह-विच्छेद पर विचार करने के लिए तारीख 30 अगस्त, 2017 नियत की गई थी । याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में याचियों द्वारा लिया गया आधार यह है कि उनका विवाह असुधार्य रूप से खंडित हो गया है और पक्षकार एक-दूसरे के साथ नहीं रह रहे हैं और वे फरवरी, 2016 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और दोनों पक्षकार इस बात के लिए परस्पर सहमत हैं कि उनका विवाह विघटित कर दिया जाए और इसलिए 6 मास की अवधि को त्यक्त कर दिया जाना चाहिए । ऊपर उद्धृत माननीय उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों से यह स्पष्ट है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त 6 मास की अतिरिक्त कानूनी अवधि में कटौती करने और आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की शक्ति इस न्यायालय सहित अन्य किसी न्यायालय को उपलब्ध नहीं है । ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन किया जा सकता है । (पैरा 10 और 11)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 4 एस. सी. सी. 393 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1099 : **मनीष गोयल** बनाम **रोहिणी गोयल ;**	9, 12
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 415 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 229 : **अनिल कुमार जैन** बनाम **माया जैन ;**	8,12

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1904 :
सुरेष्ठा देवी बनाम **ओम प्रकाश** । 6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 180.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री प्रशांत शर्मा और राजीव जीवन

प्रत्यर्थी की ओर से —

न्यायमूर्ति चन्द्र भूषण बरोवालिया – चूंकि इन दोनों याचिकाओं में एक जैसा अनुतोष मांगा गया है और इन दोनों याचिकाओं में अन्तर्वलित तथ्य भी एक जैसे हैं इसलिए इन दोनों याचिकाओं को एक साथ सुना जा रहा है और इस एक ही निर्णय द्वारा उनका निपटान किया जा रहा है ।

2. याचियों/आवेदकों (जिन्हें आगे संक्षेप में "आवेदक" कहा गया है) द्वारा वर्तमान याचिकाएं 2017 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 73-6 में तारीख 18 मार्च, 2017 को पारित आदेश तथा 2017 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 47-6 में तारीख 27 फरवरी, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई हैं जिनमें 6 मास की उपशमन अवधि याचियों के लिए मंजूर की गई थी और मामले में आपसी सहमति के साथ विवाह-विच्छेद पर विचार करने के लिए तारीख 30 अगस्त, 2017 नियत की गई थी ।

3. वर्तमान याचिकाओं से संबंधित मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं कि आवेदक-पति ने आवेदक-पत्नी के विरुद्ध क्रूरता, दुर्व्यवहार और परित्यजन के आधार पर विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश के समक्ष हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी के लिए एक याचिका संस्थित की थी, जिसमें यह उल्लिखित किया गया है कि पक्षकारों के बीच विवाह वर्ष 2012 में बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश में संपन्न हुआ था और इस विवाह से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई थी । प्रत्यर्थी-पत्नी ने उक्त याचिका में उत्तर फाइल करते हुए पक्षकारों के बीच संबंध ठीक न होने की बात को स्वीकार किया और उसने विवाह के विघटन के लिए 75 लाख रुपए के भरणपोषण का

दावा किया । इसके पश्चात् पति और पत्नी दोनों ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन पूर्वतर याचिका को संशोधित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 23, नियम 3 के अधीन 2017 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 47-6 प्रस्तुत की जो कि एक संयुक्त याचिका थी और जो "समझौता" के आधार पर पेश की गई थी । तद्नुसार दोनों पक्षकारों द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ख) के अधीन संयुक्त आवेदन फाइल किया गया था जिसमें उन्होंने यह प्रकथन किया कि वे दोनों फरवरी, 2016 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और इस अवधि के दौरान वे कभी भी साथ नहीं रहे हैं । आवेदन में यह भी प्रकथन किया गया है कि पति को दक्षिणी प्रशांत एशिया में एक परियोजना की प्रस्थापना की गई थी तथापि, वर्तमान मामले के लंबन के कारण वह उक्त परियोजना को स्वीकार करने में असमर्थ रहा है । इसके अतिरिक्त उक्त आवेदन पक्षकारों के बीच किए गए समझौते के आधार पर प्रस्तुत किया गया है जिसके द्वारा पत्नी ने आपसी सहमति के साथ विवाह विघटित करने के लिए भरणपोषण की एकमुश्त धनराशि के रूप में 75 लाख रुपए का दावा किया था और समझौते को दृष्टिगत करते हुए पत्नी ने अपने पति और उसकी भावी संपदा के विरुद्ध सभी दावों को त्यक्त कर दिया था । उक्त आवेदन के निबंधनों में दोनों पक्षकार अपने-अपने सभी मामले जिसमें पत्नी द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन फाइल की गई शिकायत भी सम्मिलित थी, वापस लेने के लिए सहमत हो गए थे । इसके पश्चात् उक्त आवेदन पर तारीख 27 फरवरी, 2017 को पक्षकारों के कथन (उपाबंध-पी4) अभिलिखित किए गए थे । यद्यपि आवेदकों ने इस आधार पर आपसी सहमति द्वारा याचिका में विवाह-विच्छेद की याचिका में संशोधन के लिए आवेदन प्रस्तुत किया कि पक्षकार 6 मास से अधिक की अवधि से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं तथापि, विद्वान् निचले न्यायालय ने मामला उपशमन अवधि के रूप में 6 मास के पश्चात् अर्थात् तारीख 30 अगस्त, 2017 के लिए मामला नियत कर दिया । इसके पश्चात् पक्षकारों ने यह अभिवचन किया कि उनके द्वारा उपशमन अवधि पहले ही पूरी कर ली गई है तथापि, उन्होंने आदेश को वापस लेने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन 2017 का दूसरा आवेदन सं. 73-6 फाइल किया क्योंकि मामला 6 मास के पश्चात् आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद पर विचार करने के लिए नियत किया गया था । तथापि, यह आवेदन विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश द्वारा इस संप्रेक्षण के साथ खारिज

कर दिया गया था कि "चूंकि इस न्यायालय को 6 मास की उपशमन अवधि से उन्मुक्त करने के लिए कोई शक्ति प्राप्त नहीं है इसलिए इस आवेदन में कोई बल नहीं है ।" अतः वर्तमान याचिकाएं फाइल की गईं ।

4. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

5. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री प्रशांत शर्मा और श्री राजीव जीवन ने यह दलील दी कि दोनों याची फरवरी, 2016 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और उनके बीच पुनः समझौता होने की कोई उम्मीद नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी कि विवाह असुधार्य रूप से खंडित हो गया है क्योंकि पक्षकार एक-दूसरे के साथ नहीं रहे हैं और फरवरी, 2016 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और पक्षकारों के बीच अंतिम समझौता हो गया है और इस संबंध में समझौता विलेख (प्रदर्श-पीए) निष्पादित किया गया है । समझौता विलेख (प्रदर्श-पीए) के निबंधनों और शर्तों के अनुसार याची की पत्नी आपसी सहमति के आधार पर विवाह के विघटन के लिए भरणपोषण की धनराशि के रूप में 75 लाख रुपए की एकमुश्त धनराशि लेने के लिए सहमत हो गई है और समझौते को दृष्टिगत करते हुए पत्नी ने अपने पति और उसकी भावी संपदा के विरुद्ध सभी दावे त्यक्त कर दिए हैं । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने यह भी दलील दी कि चूंकि किसी वस्तु के संबंध में कोई विवाद्यक या विवाद शेष नहीं रह गया है और याचियों के बीच मामले सुलझ जाने के कारण कोई विवाद्यक लंबित नहीं है इसलिए 6 मास की अवधि में कटौती करने और आपसी सहमति द्वारा और विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने में कोई बाधा नहीं है इसलिए वर्तमान याचिकाएं मंजूर की जानी चाहिए और विद्वान् निचले न्यायालय के आदेश अपास्त किए जाने चाहिए ।

6. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सुरेष्ठा देवी** बनाम **ओम प्रकाश**[1] वाले मामले में अधिनियम की धारा 13ख (2) में 6 मास से 18 मास की अवधि की प्रतीक्षा के पीछे विधायी आशय की विस्तृत रूप से चर्चा की है । निर्णय का सुसंगत भाग नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "10. उपधारा (2) के अधीन पक्षकारों से यह अपेक्षित है कि वे याचिका पेश किए जाने के पश्चात् 6 मास की अन्यून की अवधि के पश्चात् और उक्त तारीख से 18 मास की अवधि से पूर्व संयुक्त

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1904.

प्रस्ताव प्रस्तुत करें । यह प्रस्ताव न्यायालय को याचिका में किए गए प्रकथनों की सत्यता के संबंध में अपना समाधान करने के लिए मामले में कार्यवाही करने के लिए और यह पता लगाने के लिए समर्थ बनाता है कि क्या सहमति बल, कपट या असम्यक् प्रभाव द्वारा तो नहीं ली गई थी । यह न्यायालय ऐसी कोई जांच कर सकता है जैसा कि वह उचित समझे और इसमें अपना यह समाधान करने के प्रयोजन के लिए पक्षकारों की सुनवाई और परीक्षा सम्मिलित है कि क्या याचिका में किए गए प्रकथन सही हैं । यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकारों की सहमति बल, कपट या असम्यक प्रभाव द्वारा नहीं ली गई है और वे परस्पर इस बात के लिए सहमत हैं कि विवाह विखंडित होना चाहिए तो वह (न्यायालय) विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर सकता है ।

13. इस धारा के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आपसी सहमति से याचिका फाइल करना न्यायालय को विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करता । 6 से 8 मास की अवधि की प्रतीक्षा करने के लिए उपबंध किया गया है । स्पष्टतया यह अंतराल पक्षकारों को अपने प्रस्ताव पर पुनः विचार करने और समय देने और अवसर प्रदान करने तथा नातेदारों और मित्रों से सलाह-मशवरा करने के लिए है । इस अंतर्वर्ती अवधि में कोई पक्षकार अपने अंतर्मन को परिवर्तित कर सकता है कि वह याचिका पर कार्यवाही न कराए । उपधारा (2) के अधीन पति पत्नी में से कोई संयुक्त प्रस्ताव का पक्षकार नहीं भी हो सकता है । धारा में ऐसा कुछ नहीं है जो ऐसी प्रक्रिया को बाधित करे । धारा में यह कहीं उपबंध नहीं है कि यदि कोई पक्षकार अपने मन को परिवर्तित करता है तो वह कोई एक पक्षकार नहीं होना चाहिए अपितु दोनों होने चाहिए । बम्बई और दिल्ली उच्च न्यायालयों ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि विवाह-विच्छेद के लिए आपसी सहमति देने के लिए महत्वपूर्ण समय याचिका फाइल करने का समय है न कि वह समय जब वे बाद में विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए समावेदन करें । यह मत स्वीकार किए जाने योग्य प्रतीत नहीं होता । पक्षकार आपसी सहमति द्वारा याचिका फाइल करने के समय इस बात से अवगत होने चाहिए कि उनकी याचिका से स्वतः गठबंधन समाप्त हो जाएगा । उन्हें यह जानकारी होनी चाहिए कि वे वैवाहिक गठबंधन समाप्त करने के लिए कार्रवाई कर रहे हैं । धारा 13ख की उपधारा (2) इस बिन्दु पर स्पष्ट

है । इसमें यह उपबंध है कि दोनों पक्षकारों के प्रस्ताव किए जाने पर..........यदि इस दौरान अर्जी वापस नहीं ली जाती है तो न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा...........,। इस उपबंध में जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि जब पक्षकार विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए न्यायालय में समावेदन करें तो उनकी आपसी सहमति भी होनी चाहिए । द्वितीयतः न्यायालय को सद्भाविकता के बारे में और पक्षकारों की सहमति के बारे में अपना समाधान करना चाहिए । यदि जांच के समय आपसी सहमति नहीं पाई जाती है तो न्यायालय को विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने की अधिकारिता नहीं है । यदि न्यायालय अन्यथा महसूस करता है तो न्यायालय को इस बारे में जांच करनी चाहिए और किसी एक पक्षकार के अनुरोध पर भी तथा दूसरे पक्षकार की असहमति पर भी डिक्री पारित करनी चाहिए । ऐसी कोई डिक्री आपसी सहमति डिक्री के रूप में नहीं समझी जानी चाहिए ।

14. उपधारा (2) न्यायालय से पक्षकारों की सुनने की अपेक्षा करती है जिससे दोनों पक्षकारों से अभिप्रेत है । यदि कोई एक पक्षकार उस प्रक्रम पर यह कहता है कि 'मैं अपनी सहमति वापस लेता हूं या लेती हूं' अथवा 'मैं विवाह-विच्छेद के लिए इच्छुक नहीं हूं', तो न्यायालय आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं कर सकता । यदि न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि उसे प्रारंभिक अर्जी के आधार पर डिक्री पारित करने की शक्ति प्राप्त है तो वह विवाह-विच्छेद की पारस्परिक सहमति के सम्पूर्ण विचार की ही अनदेखी करता है । विवाह-विच्छेद के लिए आपसी सहमति धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए अनिवार्य शर्त है । आपसी सहमति विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने तक सतत रूप से विद्यमान होनी चाहिए । विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए न्यायालय के लिए यह एक आवश्यक अपेक्षा है । सहमति प्रारंभिक डिक्री के लिए सतत रूप से विद्यमान रहनी चाहिए और ऐसी सहमति तब तक विद्यमान रहनी चाहिए जब तक कि मामले को सुना जाए ।"

7. अब मैं वर्तमान मामले पर विचार करता हूं । विवाद्यक जो विचार के लिए उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या 6 मास की कानूनी अवधि में, जैसाकि अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन परिकल्पित है, इस

न्यायालय द्वारा कटौती की जा सकती है ।

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अनिल कुमार जैन** बनाम **माया जैन**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियों को धारा 13ख के अधीन परिवर्तित करने और विवाह के असुधार्य खंडन के सिद्धांत को लागू करके 6 मास की कानूनी अवधि के लिए प्रतीक्षा किए बिना आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की शक्ति प्राप्त है । तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि निश्चित निबंधनों में उच्चतम न्यायालय के सिवाय किसी उच्च न्यायालय या सिविल न्यायालय को विवाह के असुधार्य खंडन के सिद्धांत का आश्रय लेकर अनुतोष मंजूर करने की शक्ति प्राप्त नहीं है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "28. तथापि, यह उपदर्शित किया जा सकता है कि कुछ उच्च न्यायालयों के जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय में निहित शक्तियां प्राप्त नहीं हैं, समक्ष यह प्रश्न उदभूत हुआ था और अधिकतर मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस तथ्य के बावजूद कि विवाह असुधार्य रूप से खंडित हो गया था, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 या 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए कोई आधार नहीं था ।
>
> 29. उपर्युक्त चर्चा के अंतिम विश्लेषण के रूप में दोनों याचिकाएं खारिज कर दी गई थीं । प्रथम प्रतिपादना यह है कि यद्यपि विवाह का असुधार्य खंडन यह उपदर्शित करने वाला एक आधार नहीं है कि क्या विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 या 13ख के अधीन उक्त सिद्धांत केवल उक्त उपबंधों में से किसी के अधीन किसी कार्यवाही को लागू किया जा सकता है जहां कार्यवाहियां उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित हैं । उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग में उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13ख में उल्लिखित 6 मास की कानूनी अवधि की प्रतीक्षा किए बिना पक्षकार को अनुतोष प्रदान कर सकता है । विवाह के असुधार्य खंडन

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 415 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1029.

का यह सिद्धांत उच्च न्यायालयों को भी उपलब्ध नहीं है क्योंकि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाली समान शक्तियां प्राप्त नहीं हैं । अतः न तो सिविल न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के अधीन विहित अवधियों के पूर्व या हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख में उपबंधित आधारों के सिवाय आदेश पारित कर सकता है ।

30. द्वितीय प्रतिपादना यह है कि यद्यपि उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन असाधारण शक्तियों के प्रयोग में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन किसी कार्यवाही को धारा 13ख के अधीन परिवर्तित कर सकता है, और 6 मास की कानूनी अवधि की प्रतीक्षा किए बिना आपसी सहमति के आधार पर डिक्री पारित कर सकता है, तथापि, कोई अन्य न्यायालय ऐसी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता । यदि कोई पक्षकार डिक्री पारित करने के पूर्व अपनी सहमति को वापस ले लेता है तो अन्य न्यायालय आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए डिक्री पारित करने के लिए सक्षम नहीं हैं । विद्यमान विधियों के अधीन आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त याचिका फाइल करने के समय पक्षकारों द्वारा दी गई सहमति दूसरे प्रक्रम तक तब तक विद्यमान रहती है जब तक कि याचिका में आदेश पारित न हो जाए और विवाह-विच्छेद के लिए अंतिम रूप से डिक्री पारित न कर दी जाए और केवल उच्चतम न्यायालय ही संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग में पक्षकारों को पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए आदेश पारित कर सकता है ।"

9. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि के उपर्युक्त सिद्धांतों को **मनीष गोयल** बनाम **रोहिणी गोयल**[1] वाले मामले में दोहराया गया था । उक्त मामले में अभिव्यक्त मत इस प्रकार है :-

"इस न्यायालय ने अंजना किशोर बनाम पुनीत किशोर वाले मामले में याचिका स्थानांतरण करने को अनुज्ञात करते हुए संबंधित न्यायालय को यह निदेश दिया कि वह अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन 6 मास की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रस्ताव प्रस्तुत

---

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 393 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1099.

करने की कानूनी अपेक्षा की उपेक्षा करते हुए आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के मामले को विनिश्चित करे । इस न्यायालय ने अनिल कुमार जैन वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि कानूनी अपेक्षाओं को त्यक्त करने का आदेश केवल संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा पारित किया जा सकता है । उक्त शक्ति किसी अन्य न्यायालय में निहित नहीं है ।

13. तथापि, हमने इस न्यायालय के ऐसे अन्य कई निर्णयों की भी अवेक्षा की है जिनमें इस आशय का प्रतिकूल मत व्यक्त किया गया है कि यदि विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए विधिक आधार मौजूद नहीं है तो ऐसी शक्ति का प्रयोग करना विधान बनाने के बराबर होगा और इस प्रकार विधान-मंडल की शक्तियों का अतिक्रमण विधि में अनुज्ञेय नहीं है ।

14. सामान्यतया कोई न्यायालय विधि के प्रतिकूल कोई निदेश जारी करने के लिए सक्षम नहीं है और न ही न्यायालय किसी प्राधिकारी को कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण में कार्रवाई करने के लिए निदेश दे सकता है । न्यायालय विधि के नियम को प्रवृत्त करने के लिए अभिप्रेत हैं न कि ऐसे आदेश और निदेश पारित करने के लिए जो विधि द्वारा विहित उपबंधों के प्रतिकूल हैं ।"

10. वर्तमान मामले में याचियों द्वारा लिया गया आधार यह है कि उनका विवाह असुधार्य रूप से खंडित हो गया है और पक्षकार एक-दूसरे के साथ नहीं रह रहे हैं और वे फरवरी, 2016 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और दोनों पक्षकार इस बात के लिए परस्पर सहमत हैं कि उनका विवाह विघटित कर दिया जाए और इसलिए 6 मास की अवधि को त्यक्त कर दिया जाना चाहिए ।

11. ऊपर उद्धृत माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से यह स्पष्ट है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त 6 मास की अतिरिक्त कानूनी अवधि में कटौती करने और आपसी सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की शक्ति इस न्यायालय सहित अन्य किसी न्यायालय को उपलब्ध नहीं है । ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन किया जा सकता है ।

12. तद्नुसार विधि को दृष्टिगत करते हुए जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अनिल कुमार जैन** बनाम **माया जैन**[1] और **मनीष गोयल** बनाम **रोहिणी गोयल**[2] वाले मामलों में अधिकथित किया गया है, मुझे विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है और इसलिए वर्तमान याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं और तद्नुसार ये खारिज की जाती हैं । तथापि, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए पक्षकारों को अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करने का निदेश दिया जाता है ।

13. याचिकाओं तथा लंबित आवेदनों का, यदि कोई हों, निपटान किया जाता है ।

याचिकाएं खारिज की गईं ।

मह.

---

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 415 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 229.

[2] (2010) 4 एस. सी. सी. 393 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1099.

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 4)

[7 जनवरी, 2009]

नागरिकों की उनके निकटतम स्थान पर न्याय तक पहुंच उपलब्ध कराने के प्रयोजनों के लिए ग्रामीण स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई नागरिक सामाजिक, आर्थिक या अन्य निःशक्तता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित तो नहीं हो रहा है, और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ — (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य, नागालैंड राज्य, अरुणाचल प्रदेश राज्य, सिक्किम राज्य और जनजातीय क्षेत्रों के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

स्पष्टीकरण — इस उपधारा में, "जनजातीय क्षेत्रों" पद से संविधान की छठी अनुसूची के पैरा 20 के नीचे सारणी के भाग 1, भाग 2, भाग 2क और भाग 3 में क्रमशः असम राज्य, मेघालय राज्य, त्रिपुरा राज्य और मिजोरम राज्य के विनिर्दिष्ट क्षेत्र अभिप्रेत हैं ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "ग्राम न्यायालय" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ख) "ग्राम पंचायत" से संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्राम स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की कोई संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(ग) "उच्च न्यायालय" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी राज्य के संबंध में उस राज्य का उच्च न्यायालय ;

(ii) उस संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, जिसके लिए किसी राज्य के उच्च न्यायालय की अधिकारिता विधि द्वारा विस्तारित की गई है, वह उच्च न्यायालय ;

(iii) किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, उस राज्यक्षेत्र के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय से भिन्न, दांडिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय ;

(घ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और "अधिसूचित" पद का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ङ) "न्यायाधिकारी" से धारा 5 के अधीन नियुक्त ग्राम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी अभिप्रेत है ;

(च) "मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत" से संविधान के भाग 9 के उपबंधों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन मध्यवर्ती स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) "अनुसूची" से इस अधिनियम से संलग्न अनुसूची अभिप्रेत है ;

(झ) संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ञ) उन शब्दों और पदों के जो, इसमें प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में परिभाषित हैं वही

अर्थ होंगे, जो उन संहिताओं में हैं ।

अध्याय 2
ग्राम न्यायालय

3. ग्राम न्यायालयों की स्थापना – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम द्वारा ग्राम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा, जिले में मध्यवर्ती स्तर पर प्रत्येक पंचायत या मध्यवर्ती स्तर पर निकटवर्ती पंचायतों के समूह के लिए या जहां किसी राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं है वहां निकटवर्ती ग्राम पंचायतों के समूह के लिए एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र की स्थानीय सीमाएं विनिर्दिष्ट करेगी, जिस पर ग्राम न्यायालय की अधिकारिता विस्तारित की जाएगी और किसी भी समय, ऐसी सीमाओं को बढ़ा सकेगी, कम कर सकेगी या परिवर्तित कर सकेगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन स्थापित ग्राम न्यायालय तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन स्थापित न्यायालयों के अतिरिक्त होंगे ।

4. ग्राम न्यायालय का मुख्यालय – प्रत्येक ग्राम न्यायालय का मुख्यालय उस मध्यवर्ती पंचायत के मुख्यालय पर, जिसमें ग्राम न्यायालय स्थापित है या ऐसे अन्य स्थान पर अवस्थित होगा, जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

5. न्यायाधिकारी की नियुक्ति – राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के परामर्श से, प्रत्येक ग्राम न्यायालय के लिए एक न्यायाधिकारी की नियुक्ति करेगी ।

6. न्यायाधिकारी की नियुक्ति के लिए अर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति न्यायाधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र हो ।

(2) न्यायाधिकारी की नियुक्ति करते समय, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, स्त्रियों तथा ऐसे अन्य वर्गों या समुदायों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

7. न्यायाधिकारी का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें – न्यायाधिकारी को संदेय वेतन और अन्य भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को लागू हों ।

8. न्यायाधिकारी का उन कार्यवाहियों में पीठासीन न होना, जिनमें वह हितबद्ध है – न्यायाधिकारी ग्राम न्यायालय की उन कार्यवाहियों में पीठासीन नहीं होगा जिनमें उसका कोई हित है या वह विवाद की विषय-वस्तु में अन्यथा अंतर्वलित है या उसका ऐसी कार्यवाहियों के किसी पक्षकार से संबंध है और ऐसे मामले में न्यायाधिकारी मामले को, किसी अन्य न्यायाधिकारी को अंतरित किए जाने के लिए, यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय को भेजेगा ।

9. न्यायाधिकारी का ग्रामों में चल न्यायालय लगाना और कार्यवाहियां करना – (1) न्यायाधिकारी अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले ग्रामों का आवधिक रूप से दौरा करेगा और ऐसे किसी स्थान पर विचारण या कार्यवाहियां करेगा, जिसे वह उस स्थान के निकट समझता है जहां पक्षकार सामान्यतया निवास करते हैं या जहां संपूर्ण वाद हेतुक या उसका कोई भाग उद्भूत हुआ था :

परन्तु जहां ग्राम न्यायालय अपने मुख्यालय से बाहर चल न्यायालय लगाने का विनिश्चय करता है वहां वह उस तारीख और स्थान के बारे में, जहां वह चल न्यायालय लगाने का प्रस्ताव करता है, व्यापक प्रचार करेगा ।

(2) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी जिनके अंतर्गत उसके मुख्यालय से बाहर विचारण या कार्यवाहियां करते समय न्यायाधिकारी द्वारा चल न्यायालय लगाने के लिए वाहनों की व्यवस्था भी है ।

10. ग्राम न्यायालय की मुद्रा – इस अधिनियम के अधीन स्थापित प्रत्येक ग्राम न्यायालय, न्यायालय की मुद्रा का उपयोग ऐसे आकार और विमाओं में करेगा जो उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से विहित की जाएं ।

अध्याय 3

ग्राम न्यायालय की अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार

11. ग्राम न्यायालय की अधिकारिता – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम

न्यायालय सिविल और दांडिक, दोनों अधिकारिता का प्रयोग इस अधिनियम के अधीन उपबंधित रीति में और सीमा तक करेगा ।

12. दांडिक अधिकारिता – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा और –

(क) पहली अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा ; और

(ख) उस अनुसूची के भाग 2 में सम्मिलित अधिनियमितियों के अधीन विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा और अनुतोष, यदि कोई हो, प्रदान करेगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ग्राम न्यायालय उन राज्य अधिनियमों के अधीन ऐसे सभी अपराधों का भी विचारण करेगा या ऐसा अनुतोष प्रदान करेगा, जो धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

13. सिविल अधिकारिता – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय की निम्नलिखित अधिकारिता होगी, –

(क) दूसरी अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट वर्गों के विवादों के अधीन आने वाले सिविल प्रकृति के सभी वादों या कार्यवाहियों का विचारण करना ;

(ख) उन सभी वर्गों के दावों और विवादों का विचारण करना, जो धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा और उक्त धारा की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

(2) ग्राम न्यायालय की धनीय सीमाएं वे होंगी, जो उच्च न्यायालय द्वारा, राज्य सरकार के परामर्श से समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट की जाएं ।

14. अनुसूचियों का संशोधन करने की शक्ति – (1) जहां केन्द्रीय

सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, वहां वह अधिसूचना द्वारा, यथास्थिति, पहली अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 अथवा दूसरी अनुसूची के भाग 2 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे लोप कर सकेगी और वह तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह उच्च न्यायालय के परामर्श से अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची के भाग 3 या दूसरी अनुसूची के भाग 3 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे किसी ऐसी मद का लोप कर सकेगी, जिसकी बाबत राज्य विधान-मंडल विधियां बनाने के लिए सक्षम है और तदुपरि, यथास्थिति, पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(4) उपधारा (3) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी ।

15. परिसीमा – (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय वादों को लागू होंगे ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 36 के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराधों के संबंध में लागू होंगे ।

16. लंबित कार्यवाहियों का अंतरण – (1) यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसी तारीख से, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचित की जाए, अपने अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लंबित सभी सिविल या दांडिक मामलों को, ऐसे मामलों का विचारण या निपटारा करने के लिए सक्षम ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने विवेकानुसार उन मामलों का या तो पुनःविचारण कर सकेगा या उन पर उस प्रक्रम से आगे कार्यवाही कर सकेगा, जिस पर वे उसे अंतरित किए गए थे ।

17. अनुसचिवीय अधिकारियों के कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की प्रकृति और प्रवर्गों का अवधारण करेगी

और ग्राम न्यायालय को उतने अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जितने वह ठीक समझे ।

(2) ग्राम न्यायालय के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(3) ग्राम न्यायालय के अधिकारी और अन्य कर्मचारी ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो, समय-समय पर, न्यायाधिकारी द्वारा उन्हें समनुदेशित किए जाएं ।

अध्याय 4

दांडिक मामलों में प्रक्रिया

18. दांडिक विचारण में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय समझा जाएगा ।

19. ग्राम न्यायालय द्वारा संक्षिप्त विचारण प्रक्रिया का अपनाया जाना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 260 की उपधारा (1) या धारा 262 की उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय अपराधों का विचारण उक्त संहिता के अध्याय 21 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में करेगा और उक्त संहिता की धारा 262 की उपधारा (1) तथा धारा 263 से धारा 265 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे विचारण को लागू होंगे ।

(2) जब संक्षिप्त विचारण के दौरान न्यायाधिकारी को यह प्रतीत हो कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि उसका संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है तो न्यायाधिकारी ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुलाएगा, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उपबंधित रीति में मामले की पुनः सुनवाई के लिए अग्रसर होगा ।

20. ग्राम न्यायालय के समक्ष सौदा अभिवाक् – अपराध में अभियुक्त

व्यक्ति उस ग्राम न्यायालय में, जिसमें ऐसे अपराध का विचारण लंबित है, सौदा अभिवाक् के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा और ग्राम न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 21क के उपबंधों के अनुसार मामले का निपटारा करेगा ।

21. ग्राम न्यायालय में मामलों का संचालन और पक्षकारों को विधिक सहायता – (1) सरकार की ओर से ग्राम न्यायालय में दांडिक मामलों का संचालन करने के प्रयोजन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 25 के उपबंध लागू होंगे ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के समक्ष दांडिक कार्यवाही में परिवादी अभियोजन के मामले को प्रस्तुत करने के लिए ग्राम न्यायालय की इजाजत से अपने खर्चे पर अपनी पसंद के किसी अधिवक्ता को नियुक्त कर सकेगा ।

(3) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 6 के अधीन गठित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अधिवक्ताओं का एक पैनल तैयार करेगा और उनमें से कम-से-कम दो को प्रत्येक ग्राम न्यायालय के साथ लगाए जाने के लिए समनुदेशित करेगा जिससे कि ग्राम न्यायालय द्वारा उनकी सेवाएं अधिवक्ता की नियुक्ति करने में असमर्थ रहने वाले अभियुक्त को उपलब्ध कराई जा सकें ।

22. निर्णय का सुनाया जाना – (1) प्रत्येक विचारण में निर्णय, न्यायाधिकारी द्वारा विचारण के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को तत्काल निःशुल्क प्रदान करेगा ।

अध्याय 5

सिविल मामलों में प्रक्रिया

23. सिविल कार्यवाहियों में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम

न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

24. सिविल विवादों में विशेष प्रक्रिया – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक वाद, दावा या विवाद ग्राम न्यायालय में ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में और एक सौ रुपए से अनधिक की ऐसी फीस के साथ, जो उच्च न्यायालय द्वारा, समय-समय पर, राज्य सरकार के परामर्श से विहित की जाए, आवेदन करके संस्थित किया जाएगा ।

(2) जहां कोई वाद, दावा या विवाद सम्यक् रूप से संस्थित किया गया है, वहां ग्राम न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन की प्रति के साथ विरोधी पक्षकार को ऐसी तारीख तक, जो समनों में विनिर्दिष्ट की जाए, हाजिर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किए जाएंगे और उनकी तामील ऐसी रीति में की जाएगी जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(3) विरोधी पक्षकार द्वारा अपना लिखित कथन फाइल कर दिए जाने के पश्चात्, ग्राम न्यायालय सुनवाई के लिए तारीख नियत करेगा और सभी पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से हाजिर होने की सूचना देगा ।

(4) सुनवाई के लिए नियत तारीख को ग्राम न्यायालय दोनों पक्षकारों की उनके अपने-अपने प्रतिविरोधों के संबंध में सुनवाई करेगा और जहां विवाद में कोई साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित नहीं है वहां निर्णय सुनाएगा और ऐसे मामले में जहां साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित है वहां ग्राम न्यायालय आगे कार्यवाही करेगा ।

(5) ग्राम न्यायालय को निम्नलिखित की शक्ति भी होगी,–

(क) व्यतिक्रम के लिए किसी मामले को खारिज करना या एकपक्षीय कार्यवाही करना ; और

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिजी के ऐसे किसी आदेश या मामले की एकपक्षीय सुनवाई के लिए उसके द्वारा पारित किसी आदेश को अपास्त करना ।

(6) किसी ऐसे आनुषंगिक विषय के संबंध में, जो कार्यवाहियों के दौरान उत्पन्न हो, ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो वह न्याय के

हित में न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे ।

(7) कार्यवाहियां, जहां तक व्यवहार्य हों, न्याय के हितों से संगत होंगी और सुनवाई दिन-प्रतिदिन के आधार पर उसके निष्कर्ष तक जारी रहेगी, जब तक कि ग्राम न्यायालय ऐसे कारणों से, जिन्हें लेखबद्ध किया जाएगा, सुनवाई को अगले दिन से परे स्थगित करना आवश्यक नहीं पाता ।

(8) ग्राम न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन का निपटारा उसके संस्थित किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर करेगा ।

(9) प्रत्येक वाद, दावे या विवाद में निर्णय ग्राम न्यायालय द्वारा सुनवाई के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(10) निर्णय में मामले का संक्षिप्त विवरण, अवधारण के लिए प्रश्न, उस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अंतर्विष्ट होंगे ।

(11) निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने की तारीख से तीन दिन के भीतर निःशुल्क परिदान की जाएगी ।

25. ग्राम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का निष्पादन – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक डिक्री समझा जाएगा और उसका निष्पादन ग्राम न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी ।

(2) ग्राम न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में यथा उपबंधित किसी डिक्री के निष्पादन के संबंध में प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा और वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से मार्गदर्शित होगा ।

(3) डिक्री का निष्पादन या तो उस ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसने उसे पारित किया है या ऐसे किसी अन्य ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसे निष्पादन के लिए वह भेजी गई है, किया जा सकेगा ।

26. सिविल विवादों के सुलह और समझौते के लिए प्रयास करने का ग्राम न्यायालय का कर्तव्य – (1) प्रत्येक वाद या कार्यवाही में ग्राम

न्यायालय द्वारा प्रथम अवसर पर यह प्रयास किया जाएगा कि जहां मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत ऐसा करना संभव हो, वहां वह वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने में पक्षकारों की सहायता करे, उन्हें मनाए और उनमें सुलह कराए और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(2) जहां किसी वाद या कार्यवाही में किसी प्रक्रम पर ग्राम न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच समझौते की युक्तियुक्त संभावना है वहां ग्राम न्यायालय कार्यवाहियों को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकेगा जिसे वह ऐसा समझौता करने का प्रयास करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए ठीक समझे ।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन किसी कार्यवाही को स्थगित किया जाता है वहां ग्राम न्यायालय, अपने विवेकानुसार, पक्षकारों के बीच समझौता कराने के लिए मामले को एक या अधिक सुलहकारों को निर्देशित कर सकेगा ।

(4) उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्ति कार्यवाहियों को स्थगित करने की ग्राम न्यायालय की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त होगी, न कि उसके अल्पीकरण में ।

27. सुलहकारों की नियुक्ति – (1) धारा 26 के प्रयोजनों के लिए, जिला न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से, सुलहकारों के रूप में नियुक्ति के लिए ग्राम स्तर पर सत्यनिष्ठा रखने वाले ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के नामों का एक पैनल तैयार करेगा, जिसके पास ऐसी अर्हताएं और अनुभव हों, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किए जाएं ।

(2) सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. सिविल विवादों का अंतरण – अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय, किसी पक्षकार द्वारा किए गए आवेदन पर या जब किसी एक ग्राम न्यायालय के पास काफी मामले लंबित हों या जब कभी वह न्याय के हित में ऐसा आवश्यक समझे, किसी ग्राम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को अपनी अधिकारिता के भीतर किसी अन्य ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

अध्याय 6

साधारणतः प्रक्रिया

29. कार्यवाहियों का राज्य की राजभाषा में होना – ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां और उसका निर्णय, जहां तक व्यवहार्य हो, अंग्रेजी भाषा से भिन्न राज्य की राजभाषाओं में से किसी एक में होंगे ।

30. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का लागू होना – ग्राम न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसी किसी रिपोर्ट, कथन, दस्तावेज, सूचना या विषय को ग्रहण कर सकेगा जो, उसकी राय में, किसी विवाद को प्रभावी रूप से निपटाने में उसकी सहायता करता हो, चाहे वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) के अधीन अन्यथा सुसंगत या ग्राह्य हो या नहीं ।

31. मौखिक साक्ष्य का लेखबद्ध किया जाना – ग्राम न्यायालय के समक्ष वादों या कार्यवाहियों में साक्षियों के साक्ष्य को विस्तार से लेखबद्ध करना आवश्यक नहीं होगा, किंतु न्यायाधिकारी, जैसे ही प्रत्येक साक्षी की परीक्षा अग्रसर होती है, साक्षी द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के सार का ज्ञापन लेखबद्ध करेगा या लेखबद्ध कराएगा और ऐसे ज्ञापन पर साक्षी और न्यायाधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे तथा वह अभिलेख का भाग बनेगा ।

32. औपचारिक प्रकृति के साक्ष्य का शपथ-पत्र पर होना – (1) किसी व्यक्ति का साक्ष्य, जहां ऐसा साक्ष्य औपचारिक प्रकृति का है, शपथ-पत्र द्वारा दिया जा सकेगा और सभी न्यायसंगत अपवादों के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के समक्ष किसी वाद या कार्यवाही में साक्ष्य में पढ़ा जा सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, वाद या कार्यवाही में किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और उसके शपथ-पत्र में अंतर्विष्ट तथ्यों के बारे में उसकी परीक्षा करेगा ।

अध्याय 7

अपीलें

33. दांडिक मामलों में अपील – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध कोई अपील इसमें यथा उपबंधित के सिवाय नहीं होगी ।

(2) कोई अपील उस दशा में नहीं होगी जहां, –

(क) अभियुक्त व्यक्ति ने दोषी होने का अभिवाक् किया है और उसे उस अभिवाक् पर दोषसिद्ध किया गया है ;

(ख) ग्राम न्यायालय ने केवल एक हजार रुपए से अनधिक के जुर्माने का दंडादेश पारित किया है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के किसी अन्य निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील सेशन न्यायालय को होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर होगी :

परंतु यदि सेशन न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(5) उपधारा (3) के अधीन की गई अपील की सेशन न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(6) सेशन न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान, उस दंडादेश या आदेश के निलंबन का निदेश दे सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(7) उपधारा (5) के अधीन सेशन न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और सेशन न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

34. सिविल मामलों में अपील – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या ऐसे आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील जिला न्यायालय को होगी ।

(2) ग्राम न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील, –

(क) पक्षकारों की सहमति से नहीं होगी ;

(ख) जहां किसी वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां नहीं होगी ;

(ग) जहां ऐसे वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य पांच हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां विधि के किसी प्रश्न के सिवाय नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परंतु यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन की गई अपील की जिला न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(5) जिला न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान उस निर्णय या आदेश के निष्पादन पर रोक लगा सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(6) उपधारा (4) के अधीन जिला न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और जिला न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

35. ग्राम न्यायालयों को पुलिस की सहायता – (1) ग्राम न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर कार्यरत प्रत्येक पुलिस अधिकारी ग्राम न्यायालय की उसके विधिपूर्ण प्राधिकार के प्रयोग में सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) जब कभी ग्राम न्यायालय, अपने कृत्यों के निर्वहन में, किसी राजस्व अधिकारी या पुलिस अधिकारी या सरकारी सेवक को ग्राम न्यायालय की सहायता करने का निदेश देगा तब वह ऐसी सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

36. न्यायाधिकारियों और कर्मचारियों आदि का लोक सेवक होना – न्यायाधिकारियों और ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के बारे में, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हैं या उनका कार्य करना तात्पर्यित है, यह समझा जाएगा कि वे भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक हैं ।

37. ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण – उच्च न्यायालय, न्यायाधिकारी की पंक्ति से वरिष्ठ किसी न्यायिक अधिकारी को प्रत्येक छह मास में एक बार या ऐसी अन्य अवधि में, जो उच्च न्यायालय विहित करे, अपनी अधिकारिता के भीतर ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण करने और ऐसे अनुदेश जारी करने के लिए, जो वह आवश्यक समझे, तथा उच्च न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

38. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन कोई भी आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

39. उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति – (1) उच्च न्यायालय, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 10 के अधीन ग्राम न्यायालय की मुद्रा का आकार और विमाएं ;

(ख) धारा 24 की उपधारा (1) के अधीन वाद, दावा या कार्यवाही संस्थित किए जाने के लिए प्ररूप, रीति और फीस ;

(ग) धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन विरोधी पक्षकार पर तामील की रीति ;

(घ) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन सुलह के लिए प्रक्रिया ;

(ङ) धारा 27 की उपधारा (1) के अधीन सुलहकारों की अर्हताएं और अनुभव ;

(च) धारा 37 के अधीन ग्राम न्यायालय के निरीक्षण के लिए अवधि ।

(3) उच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी ।

40. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 17 की उपधारा (2) के अधीन ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 27 की उपधारा (2) के अधीन सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

पहली अनुसूची

(धारा 12 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन अपराध, आदि

(i) ऐसे अपराध जो मृत्युदंड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय नहीं है ;

(ii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379, धारा 380 या धारा 381 के अधीन चोरी, जहां चुराई गई संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 411 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को प्राप्त करना या प्रतिधारित करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iv) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 414 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को छुपाने या उसके व्ययन में सहायता करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 454 और धारा 456 के अधीन अपराध ;

(vi) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 504 के अधीन शांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से अपमान और धारा 506 के अधीन ऐसी अवधि के, जो दो वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय आपराधिक अभित्रास ;

(vii) पूर्वोक्त अपराधों में से किसी का दुष्प्रेरण ;

(viii) पूर्वोक्त अपराधों में से कोई अपराध करने का प्रयत्न, जब ऐसा प्रयत्न अपराध हो ।

भाग 2

अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(i) ऐसे किसी कार्य द्वारा गठित कोई अपराध, जिसकी बाबत पशु

अतिचार अधिनियम, 1871 (1871 का 1) की धारा 20 के अधीन परिवाद किया जा सकेगा ;

(ii) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) ;

(iii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) ;

(iv) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) ;

(v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पत्नियों, बालकों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश ;

(vi) बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 (1976 का 19) ;

(vii) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (1976 का 25) ;

(viii) घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) ।

भाग 3

राज्य अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

दूसरी अनुसूची

(धारा 13 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

ग्राम न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर सिविल प्रकृति के वाद

(i) **सिविल विवाद** :

(क) संपत्ति क्रय करने का अधिकार ;

(ख) सामान्य चरागाहों का उपयोग ;

(ग) सिंचाई सरणियों से जल लेने का विनियमन और समय ;

(ii) **संपत्ति विवाद** :

(क) ग्राम और फार्म हाउस (कब्जा) ;

(ख) जलसरणियां ;

(ग) कुएं या नलकूप से जल लेने का अधिकार ;

(iii) **अन्य विवाद :**

(क) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) के अधीन दावे ;

(ख) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) के अधीन दावे ;

(ग) व्यापार संव्यवहार या साहूकारी से उद्भूत धन संबंधी वाद ;

(घ) भूमि पर खेती में भागीदारी से उद्भूत विवाद ;

(ङ) ग्राम पंचायतों के निवासियों द्वारा वन उपज के उपयोग के संबंध में विवाद ।

भाग 2

केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

भाग 3

राज्य सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित राज्य अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105